प्रस्तावना.

ॐ सर्व महाशय सज्जनोको विदित हो कि मनुष्यशरीर को प्राप्त होकरके खानपान निद्रामैथुनादि कार्योमेही सर्व आयुष व्यतीत करना उचित नहि है क्योंकि खानपान मैथुनादि व्यवहार तो पशुपक्षिआदि योनियोमेभी समान है तो मनुष्य शरीरकी क्या अधिकता हुई याते मनुष्य को चहिये कि शास्त्रोक्त रीतिसे नित्याचारका पालन करता हूया इष्ट देव तथा ईश्वरका आराधन करे ताकि इसलोक तथा परलोक दोनो जगा सुखको प्राप्त होवे सो जैसे पशुजाति मनुष्योके अधीन है तैसेहि मनुष्यजाति देवतायों के अधीन है यातें मनुष्यजाति की उन्नति देवतायो के आराधन द्वारा ही हो सके है और शुद्ध आचारका पालन करना तिसका अंगभूत है इसलिये इस ग्रन्थ मे नित्याचार के साथ देवतायों के आराधनकी विधि यिरूपण करी है सो यद्यपि वेदशास्त्रोंमें अनेक देवता लिखे हैं तथापि विष्णु शिव दुर्गा यह तीन देवताही सर्व देवतायों से मुख्य ईश्वरका सगुण स्वरूप माने जाते हैं यातें तिन तीनोके आराधनकी संपूर्ण विधि इस ग्रन्थमे कथन करी है तथा पीछे ईश्वरके निर्गुण स्वरूपके आराधनकी विधीभी संक्षेपसे लिखी है सो विवेकी पुरुषोको इस ग्रन्थमे लिखेअनुसार नित्याचारका पालन करते हुये ईश्वर का आराधन अवश्य करना योग्य है इत्यलम् ॥

द० स्वामिब्रह्मानंदः



स्वामीब्रह्मानंदजी.



(श्रीरमापतयेनमः)

अथ

श्रीनित्याचारदर्पण प्रारंभः

(मंगलम्)

नत्वा पादांबुजं विष्णोरिहामुत्र सुखावहम् ।
नित्याचारविधिं वक्ष्ये पूर्वर्षिवचनान्वितम् ॥

अर्थ-प्रथम सर्व चराचर जगत्में व्यापक जो विष्णु परमात्मा है तिनके चरणकमलों को नमस्कार करके व्यासवसिष्ठपराशरादि महर्षियोंके वचनोंके अनुसार जिज्ञासुजनोंके हितार्थ इस लोक तथा परलोकमें सुखदेनेहारा जो नित्याचार है तिसका संक्षेपसे इस ग्रंथमें विधान निरूपण करते हैं क्योंकि सर्व धर्मोंका मूलकारण प्रथम आचारही है यह वार्ता वसिष्ठसंहितामें कथन करी है ॥

आचारः प्रथमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ।
हीनाचारः परीतात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति ॥

नैनं तपांसि न ब्रह्म नाग्निहोत्रं न दक्षिणा ।
हीनाचाराश्रितं भ्रष्टं तारयंति कथंचन ॥

अर्थ-ब्राह्मणादि सर्व वर्णोंको और ब्रह्मचर्यादि सर्व आश्रमोंको प्रथम आचार पालन करणाहि परम धर्म है जो पुरुष आचारसे हीनहै सो इस लोक तथा परलोकमें क्लेशका भागी होवे है तथा तपश्चरण वेदाध्ययन अग्निहोत्र दक्षिणा इत्यादि सर्व कर्म भ्रष्टाचार पुरुष को कदाचित् संसारसमुद्रसें तार नहीं सकते हैं इति । तथा दक्षस्मृतिमेंभी कहा है ॥

आचाराल्लभते पूजामाचाराल्लभते प्रजाः ।
आचारात्प्राप्यते स्वर्गमाचारात्प्राप्यते सुखम् ॥
आचारात्प्राप्यते मोक्ष आचारात्किं न लभ्यते ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ।
दुःखभोगी च सततं रोगी चाल्पायुषी भवेत् ॥

अर्थ-आचार पालनकरणे से इसलोकमें प्रतिष्ठा तथा अच्छी प्रजा की प्राप्ति होवे है और परलोकमें स्वर्गसुख तथा मोक्षकी प्राप्ति

होवे है किंच जगत्में ऐसा पदार्थ कोई नहींहै जो आचार से नहिं प्राप्त होवे है अर्थात् सर्व मनोवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति होवेहै और जिन के शरीर आचारसे भ्रष्ट हैं तिनपुरुषोंसे सर्वदा धर्म विमुखरहताहै तथा दुराचारीपुरुष लोकमें निंदित होवे है और सर्वदा दुःखी रोगी और अल्पायुवाला होवेहै इसलिये विवेकी पुरुषोंको अवश्य नित्याचारका विधिपूर्वक आचरण करना योग्यहै। सो नित्याचार प्रातःकालसेलेकर रात्री में शयनकालपर्यन्त जो जो विवेकी जनोंको आचरणकरणा उचितहै सो क्रमसे निरूपणकरते हैं प्रथमतो प्रातःकाल ब्राह्म मुहुर्त में उठकर परमेश्वरका चिंतनकरना चाहिये यह वार्ता मनुस्मृति में कथन करी है ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिंतयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ॥

अर्थ-प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमेंउठकरकेधर्म अर्थ कायक्लेश और तिनके हेतु तथा वेदका तत्वार्थभूत जो परमात्मा है तिसका चिंतन

करना चाहिये, इति ॥ सो ब्राह्ममुहूर्तका लक्षण विष्णुपुराणमें निरूपण किया है ॥

रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः ।
स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने ॥

अर्थ—रात्री के चतुर्थप्रहरका जो तीसरा मुहूर्तहै अर्थात् जब चारघटिका रात्री शेष रहे है तिस समय का नाम ब्राह्ममुहूर्त है सो ब्राह्ममुहूर्त ही जागने के लिये शास्त्रमें कथन किया है इति ॥ तिसकालमें जो पुरुष आलस्य के वशीभूत होकर नहीं जागते हैं सो दोषके भागी होते हैं यह वार्ता स्मृतिरत्नावली में कथन करी है ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।
तां करोति द्विजो मोहात्पादकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥

अर्थ–ब्राह्ममुहूर्तमें जो निद्रा है सो सर्व पुण्योंके क्षय करणेहारीहै इसलिये तिसकाल में जो पुरुष शयन करता है सो पश्चात् तीन दिन उपवास करणे से शुद्ध होवे है इति ॥ सो ब्राह्ममुहूर्त में उठ करके प्रथम अपने कर-

तल का अवलोकन करना चाहिये यह वार्ता आचार प्रदीप में लिखी है ॥

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम् ॥

अर्थ-हाथके अग्रभागमें तो लक्ष्मीका निवास है मध्यमें सरस्वतीका निवास है और मूलमें ब्रह्मा का निवास है इसलिये प्रातःकाल उठकर अवश्य अपने दोनों हाथोंको सन्मुख करके देखना चाहिये इति ॥ तदनंतर पवित्र जलमें आचमन करणा चाहिये यह वार्ता अंगिरास्मृतिमें कथन करी है ॥

उत्थाय पश्चिमें रात्रे तत आचम्य चोदकम् ।
मुखशुद्ध्यर्थमादौ तु गंडूषत्रितयं चरेत् ॥

अर्थ-रात्रिके पीछले भाग में उठकरके प्रथम मुखशुद्धिके अर्थ जलसे तीन कुगली करके तीनबार आचमन करणा चहिये इति ॥ पश्चात् स्वस्थ बैठकर परब्रह्म परमेश्वर तथा अपने इष्टदेवका स्मरण करना चाहिये सो प्रातःस्मरणका प्रकार महर्षि व्यासजीने निरूपण किया है ॥

प्रातःस्मरामि भवभीतिमहार्तिशांत्यै नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ॥ ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं चक्रायुध तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥ १ ॥ प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविंदयुगलं परमस्य पुंसः ॥ नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य पारायणप्रणवविप्रपरायणस्य ॥ प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं प्राक् सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै॥ योग्राहवक्त्रपतितांघ्रिगजेन्द्रघोरशोकप्रणाशनकरोधृतशंखचक्रः॥

अर्थ–गरुडवाहन कहिये गरुड है वाहन जिनका और कमल है नाभिमें जिनकी तथा ग्राहके मुखसे गजेन्द्रको छुडानेहारे और सुदर्शनचक्रको हाथमें धारण करणेहारे तथा सुंदर कमल के पत्रसमान है नेत्र जिनके ऐसे जो भगवान् नारायणपरमात्मा है तिनका जन्म मरणरूप संसारके महाभयके नाश होनेके लिये मैं प्रातःकालमें हृदयमें स्मरण करता हुं॥ तथा भक्तजनोंको नरकरूप समुद्रसें पार करने हारे और वेदपरायणके ॐकारके और ब्राह्म-

णोंके परमाश्रयभूतजोपरमपुरुष विष्णुपरमात्मा है तिनके चरणकमलयुगको प्रातःकालमें मन वाणी तथा शिरकरके मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हुं ॥ तथा भक्तजनोंको अभय करणेहारे और ग्राहके मुखमें फसेहुये गजेंद्रके शोक नाशकरणेहारे तथा हाथोंमे शंखचक्रके धारण करणेहारे जो विष्णुभगवान् हैं तिनका पूर्वजन्मकृत सर्वपापोंके नाश होनेके लिये मैं प्रातःकालमें भजन करता हुं, इति ॥ इसप्रकार वैष्णवोंकेलिये प्रातःस्मरण निरूपणकरके अब शैवलोकोंकेलिये कथन करते हैं ॥

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गंगाधरं वृषभवाहनमंबिकेशम् ॥ खट्वांगशूलवरदाभयहस्तमीशं संसाररोगहरमौषधमाद्वितीयम् ॥ प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहंसर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ॥ विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ प्रातर्भजामि शिवमेकमनंतमाद्यंवेदांतवेद्यमखिलं पुरुषं महांतम् ॥ नामादिभे-

द्रहितं सुखदुःखशून्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ३ ॥

अर्थ-जन्ममरणरूप संसार भयके नाश करणेहारे और सर्व देवतायोंके ईश्वर शिरमें गंगाजल धारण करणे हारे वृषभवाहन और पार्वतीके पति हाथोंमें खट्वांग त्रिशूल वरदान अभय धारण करणेहारे संसाररूप रोगके नाश करणेमें परम ओषधरूप जो शंकर हैं तिनका मैं प्रातःकालमें स्मरण करताहुं ॥ तथा अर्धांग में जिनके पार्वतीजी विराजमान है और जगत्की उत्पत्ति पालन नाश करणेहारे आदिदेव सर्व जगत्के ईश्वर और कामदेवके जीतनेहारे संसाररूप रोगके नाश करणेमें परम औषधरूप जो गिरिश कहिये महादेव हैं तिनको प्रातःकालमें मैं नमस्कार करताहुं ॥ तथा एक अनंत और सर्व जगत्के आदिकारण वेदांतशास्त्रकरके जाननेयोग्य सर्व चराचर विश्वमें व्यापकरूप महान् पुरुष और नामरूप सुखःदुखादिभेदसेरहित संसाररूप रोगके नाश कार-

नेमें परम औषधरूप जो शिवजी हैं तिनका प्रातःकालमें मैं भजन करता हुं इति ॥ इस-प्रकारसे शैवोंकेलिये प्रातःस्मरणविधान करके अब शाक्त लोकोंकेलिये कथन करते हैं ॥

प्रातःस्मरामि शरदिंदुकरोज्वलाभां सद्रत्न-वन्मकरकुंडलहारभूषाम् ॥ दिव्यायुधोर्जितसु-नीलसहस्रहस्तां रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥ १ ॥ प्रातर्नमामि महिषासुरचंडमुंड-शुंभासुरप्रमुखदैत्याबिनाशदक्षाम् ॥ ब्रह्मेंद्ररुद्र-मुनिमोहनलोलशीलां चंडीं समस्तसुरमूर्तिम-नेकरूपाम् ॥ २ ॥ प्रातर्भजामि भजतामभिलाष-दात्रीं धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहंत्रीम् ॥ संसारबंधनविमोचनहेतुभूतां मायां परां सम-धिगम्य परस्य विष्णोः ॥ ३ ॥

अर्थ—शरदऋतु के चंद्रमाके समान है श-रीरकी कांति जिसकी कानोंमें सुंदर रत्नजड़े हुये मकराकृति कुंडल और कंठमें मोतियोंके हार शोभायमान हैं तथा त्रिशूलचक्रादि दिव्य शस्त्र हजारों हस्तों में धारण कियेहुये हैं और

लाल कमल के समान जिसके चरणोंकी प्रभा है ऐसी जो परमेश्वरी दुर्गा भगवती है तिस का प्रातःकालमें मैं स्मरण करता हुं ॥ तथा महिषासुर चंडमुंड शुंभासुर इत्यादि दैत्योंके नाश करनेमें परमकुशल और ब्रह्मा इन्द्र रुद्रादि देवता तथा नारद वसिष्ठादि मुनियों के मोहन करने का चंचल है स्वभाव जिसका ऐसी जो सर्व देवता स्वरूप और अनेक रूप धारण करनेहारी चंडी भगवती है तिसको प्रातःकालमें मैं नमस्कार करता हूं. तथा भक्त जनों को सर्व कामना की देनेहारी और सर्व चराचर जगत् के धारण करणेहारी और सर्व पापों के नाश करणेहारी संसार रूप बंधन छुडानेमें कारणभूत ऐसी जो परमात्मा विष्णूकी माया रूप शक्ति है तिसका प्रातःकाल में मैं भजन करता हूं ॥ इति ॥ इस प्रकार शाक्तलोगों के लिये प्रातःस्मरणका प्रकार निरूपण करके अब ईश्वर के निर्गुण स्वरूप के उपासकों के लिये कथन करते हैं ॥

प्रातः स्मरामि परमेश्वरमादिदेवं दैवं परं दिविषदामपि दैवतानाम् सर्वत्र विश्वरचना करणप्रवीणं हीनं समस्तजनता गुणदोषसंगैः ॥ १ ॥ प्रातर्भजामि भजतां भवभीतिहारं सारं समस्तनिगमागम पद्धतीनाम् । तारं भवांबुनिधिनीरपरंपरायाः पारं सदा जननमृत्युजरामयानाम् ॥ २ ॥ प्रातर्नमामि शिवशक्तिगणेशगीतं नीतं मुनीन्द्रनिवहैर्हृदयांबुजेषु आकारवर्जित मनेकविकारहेतुं सेतुं समस्त जगतोऽस्य चराचरस्य ॥

अर्थ–जो परमेश्वर सर्वसृष्टिका आदिदेवहै और स्वर्गमें रहनेहारे सर्व देवतायोंका भी परम पूज्य देव है और जो भूमि आकाश आदि सर्व जगत् की रचना करनेमें बडा कुशल है तथा सर्व जीवों के गुण वा दोषों से निर्लेप है तिस ईश्वर का मैं प्रातःकाल उठकर स्मरण करता हुं। तथा जो परमेश्वर अपने भक्तजनोंके भवभय दूर करनेहारा और सर्व वेद शास्त्रों का सारभूतहै और संसाररूप समुद्र से पार करनेहारा जन्म मृत्यु जरा रोग आदि सर्वदोषों से रहित

है तिस ईश्वरका मैं प्रातःकालमें भजन करता हुं । तथा जिस परमेश्वरका शिव शक्ति गणेश भी गुण गायन करतेहैं और जिसका मुनीन्द्र लोक अपने हृदय कमलमें ध्यान करते हैं और जो आप निराकार हूया भी सर्व विकार रूप जगत् रचना का हेतूभूत है अर्थात् कारणरूप है तथा इस चराचर सर्वजगत्का आधारभूतहै तिस ईश्वर को प्रातःकालमें मैं नमस्कार करता हूं इति ॥

इस प्रकार उक्त रीतिसे प्रातःकालमें इष्ट देव तथा ईश्वरका स्मरण करके पश्चात् ईश्वर से शय्या से उठने की अनुज्ञा लेनी चाहिये सो अनुज्ञाका प्रकार भी व्यासजीने ही कथन किया है ॥

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव ॥ प्रातःसमुत्थाय भवत्प्रियार्थं संसारयात्रां परिवर्त्तयिष्ये ॥ सुप्तः प्रबोधितो विष्णो हृषीकेशेन यत्वया ॥ यद्यत्कारयसे कर्म तत्करोमि तवाज्ञया ॥

अर्थ-हे त्रैलोक्य में चेतन स्वरूप आदि-देव लक्ष्मीपते सर्वव्यापक भगवन् आपकी आज्ञासे प्रातःकालमें उठकर के केवल आप की प्रसन्नताके लिये मैं नाना प्रकारके व्यवहार रूप संसारयात्रामें वर्तन करूंगा ॥ तथा हे सर्वव्यापक सर्व इन्द्रियोंके प्रेरक ईश्वर आपने जो मेरेको निद्रासे जगाया है इसलिये जिस २ कर्ममें आप मुझको अंतर्यामीरूप से प्रेरणा करोगे सोई सोई कर्म मैं आपकी आज्ञानुसार करूंगा इति ॥ इसप्रकार परमेश्वर से अनुज्ञा लेकर पश्चात् पृथ्वी की प्रार्थना करणी चाहिये सो प्रार्थना की विधि मदनपारिजातमें कथन करी है ॥

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमंडले ॥
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे ॥

अर्थ-हे समुद्ररूप वस्त्रको धारणकरणेहारी और पर्वतरूप स्तनमंडलवाली विष्णु परमात्माका की दूसरी भार्यारूप पृथिवी माता गमनागमन से मेरे चरण का जो तेरे ऊपर स्पर्श होवेगा सो तूं मेरेको क्षमा करना इति ॥ इस

प्रकार पृथिवी की प्रार्थनापूर्वक शय्या से उठ करके पश्चात् शौचक्रियाके लिये जानाचाहिये जो घरमें ही शौच का स्थान होय तो विशेष विचार नहीं है और जो ग्रामसे बाहिर जंगल में जाना हो तो तिसका विधान अंगिराऋषि ने कथन किया है।

अयज्ञियैरनार्द्रैश्चतृणैः संछाद्य मेदिनीत्।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः॥

अर्थ—कुशादिक जो पवित्र तृण हैं तिनको छोडके दूसरे शुष्क तृणोंसे जमीन को प्रथम आच्छादन करके एकांत और सफा जगापर मलमूत्रका परित्याग करणा चहिये इति॥ परन्तु कूप नदीतडागादि जलाशयके समीप मलमूत्रका त्याग नहीं करणा चहिये यह बार्ता बौधायनऋषिने कथन करी है॥

शतहस्तान्परित्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशये।
शतहस्तान्पुरीषार्थे तीर्थे नद्यां चतुर्गुणम्॥
धाराशौचं न कुर्वीत शौचशुद्धिमभीप्सता।
चुलकैरेव कर्त्तव्यं हस्नशुद्धिविधानतः॥

अर्थ—तडाग वापी कूपादि जलाशय से दश हाथ मूत्र दूर करना चाहिये और मल त्याग करना हो तो तहांसे एकसौ हाथ दूर जमीन छोड़कर करनाँ चाहिये और नदी अथवा तीर्थसे चतुर्गुण अर्थात् चारसौ हाथ दूर करना चहिये ॥ तथा शौचक्रियाके अनंतर शौचशुद्धि करनेवाले पुरुषको जलकी धारासे शौच नहीं करना चहिये किन्तु वामें हाथ करके चुलकों सें शुद्धि करणी चाहिये इति ॥ सो शुद्धिके लिये मृत्तिका की संख्या भृगुसंहिता में कथन करी है ॥

द्वे लिंगे मृत्तिके देये गुदे पंच करे दश।
उभयोःसप्त दातव्या विट्शौचे मृत्तिकाःस्मृताः

अर्थ-शौचके अनंतर प्रक्षालन करने में दोवार तो लिंगमे मृत्तिका लगाना चाहिये और पांचवार गुदामें लगानी चाहिये, पश्चात् दशवार वाये हाथमें और सातवार दोनों हाथों में लगानी चहिये तथा तीन तीन वार दोनों पावोंमें लगानी चाहिये इस प्रकार शौचकालमें मृत्तिका लगानेकी संख्या ऋषिलोकोंने कथन

करी है इति ॥ और एकले मूत्र त्यागमें तो केवल जलसे चालन करने से ही शुद्धि होवे है इसलिये मृत्तिका की आवश्यकता नहीं है ॥ तथा शौचकालमें दिशाका विधान यमस्मृति में निरूपण किया है ॥

प्रत्यङ्मुखस्तु पूर्वाह्णेऽपराह्णे प्राङ्मुखस्तथा ।
उदङ्मुखस्तु मध्याह्ने निशायां दक्षिणामुखः ॥

अर्थ–प्रातःकालमें तो पश्चिमादिशाकीतरफ मुख करके बैठना चाहिये, पीछले पहर में पूर्व की तरफ, मध्याह्नकालमें उत्तरकी तरफ और रात्रिमें दक्षिणकी तरफ मुख करके बैठनाचाहिए इति ॥ और जो छाया अथवा अंधकार हो तो जैसे मरजी हो बैठे कुछ विचार नहीं है अर्थात् सूर्य चंद्रमा और अग्निके सन्मुख कदाचित् नहीं बैठना चाहिये, ऐसेही केवल मूत्र त्यागमें भी जानलेना ॥ तथा शौचकालमें यज्ञोपवीत धारन करने की विधि सायणीय में कथन करी है ।

मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे पुरीषे वामकर्णके ।
उपवीतं सदा धार्यं मैथुने तूपवीतिवत् ॥

मलमूत्रं त्यजेद्विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक् ।
उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ॥

अर्थ—मूत्रत्यागकाल में यज्ञोपवीत को दहने कानपर धारण करना चाहिये और शौच-कालमें वामे कानपर धारण करना चाहिये तथा मैथुनकालमें कंठमें धारण करणा चाहिये ॥ और जो मलमूत्र त्यागकालमें यज्ञोपवीत को कानपर धरणा भूल जावे तो तिस प्रथम यज्ञोपवीतका परित्याग करके दूसरा नवीन धारण करना चाहिये इति ॥ सो यज्ञोपवीत धारण करते वकत इस मंत्रको तीन वार बोलना चाहिये ॥

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

अर्थ—यह यज्ञोपवीत बडा पवित्र है क्यों कि यहसृष्टिके आदिमें ब्रह्माके साथहीउत्पन्न होताभया है गलेमें धारण करने से यह उत्तम आयु की वृद्धि करता है इसलिये हे पुरुष तुं इसको धारण कर यह तेरे शरीर में बल और तेज बढाने वाला होवो इति ॥

तथा शौचकालमें जलका पात्र कभी हाथ में नहीं रखना चहिये यह वार्ता भी सायणी-यमें ही कथन करी है ॥

गृहीत्वा जलपात्रं तुं विण्मूत्रं कुरुते यदि ।
तज्जलं मूत्रसदृशमतश्चांद्रायणं चरेत् ॥

अर्थ-जलके पात्रको हाथमें रखकरके जो मलमूत्रका त्याग करे तो सो जल मूत्रके तुल्य अपवित्र हो जावे है इसलिये तिस जलसे शौचक्रिया करे तो चांद्रायण व्रत करणे से शुद्धि होवे है इति ॥ तथा शौचकालमें किससि संभाषण भी नहीं करणा चहिये यह वार्ता हारीत-संहितामें कथन करी है ॥

उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दंतधावने ।
श्राद्धे भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत् ॥

अर्थ-शौचकालमें मैथुनकालमें मूत्रकालमें दंतधावनकालमें श्राद्धकालमें और भोजनका-लमें इन षट् स्थलोंमें अवश्य मौन धारण करणा चाहिये इति ॥ इस प्रकार शौचक्रिया से निवृत होकर पूर्वोक्त रीतिसे मृत्तिकासे हस्त-पादशुद्धि करके पश्चात् पवित्र जलसे द्वादशवार

कुरली करणी चाहिये यह वार्ता आश्वलायन ऋषिने कथन करी है ॥

कुर्याद्द्वादशगंडूषान्पुरीषोत्सर्जने ततः ।
मूत्रोत्सर्गे च चतुरो भोजनांते तु षोडश ।
पुरतः सर्वदेवाश्च दक्षिणे पितरस्तथा ।
ऋषयः पृष्टतः सर्वे वामे गंडूषमाचरेत् ॥

अर्थ-शौचक्रियाके अनंतर बारंवार जलसे कुरली करणा चाहिये और केवल मूत्र त्यागके अनंतर चारवार करणा चाहिये तथा भोजनके अनंतर सोलां वार करणा चाहिये । पुरुष के अग्रभाग में सर्व देवता रहते हैं और दहने भागमें सर्व पितरों का निवास है और पृष्ट भाग में सर्व ऋषियों का निवास है इसलिये हमेशां अपनी वामी तरफ कुरली फेकनी चहिये इति ॥ इस प्रकार मुखशुद्धि करके पश्चात् दंतशुद्धिके लिये दंतधावन करणा चाहिये यह वार्ता बृहस्पतिसंहितामें विधान करी है ।

अथो मुखविशुध्यर्थं गृह्णीयाद्दंतधावनम् ।
आचांतोप्यशुचिर्यस्माद्कृत्वा दंतधावनम् ॥

अर्थ-शौचाक्रिया के अनंतर मुखशुद्धि के लिये दंतधावन (दातन) करना चाहिये, क्योंकि दंतधावन किये विना आचमन करणे से भी मुख अशुचि रहता है इति ॥ सो दंतधावनका परिमाण नागदेव ने कथन किया है ॥

दशांगुलं तु विप्राणां क्षत्रियाणां नवांगुलम् ।
अष्टांगुलं तु वैश्यानां शूद्राणां सप्तसंमितम् ॥

अर्थ-ब्राह्मणोंको दश अंगुल लंबी दंतधावन करणी चहिये क्षत्रियोंको नव अंगुल, वैष्योंको आठ अंगुल और शूद्रोंको सात अंगुल लंबी करणा चहिये इति ॥ तथा दंतधावनके योग्य काष्ठभी नागदेवनेही कथन किये हैं ॥

करंजोदुंबरौ चूतः कदंबो लोध्रचंपकौ ।
बदरीति द्रुमाश्चैते प्रोक्ता दंतप्रधावने ॥

अर्थ-करंजा गूलर आम्र कदंव लोध्र चंपा बेरी और चकार से नीम बम्बूल अपामार्गादि भी जान लेवे । इन वृक्षों के काष्ठ से दंतधावन करणी उत्तम है इति । तथा दंतधावन करते वक्त इस मंत्रको पढना चहिये ॥

आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुन्वसूनिच ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो धेहि वनस्पते ॥

अर्थ--हे वनस्पते दीर्घ आयु विपुल बल लोकमें विमलयश और ब्रह्मतेज श्रेष्ठ संतति अश्वादिक पशु और विपुल धन वेदाध्ययन श्रेष्ठ बुद्धि और शास्त्रोंकेपठन धारण करणेकी शक्ति इतनी वस्तु तूं हमारेमें धारण कर इति। तथा दंतधावन वर्जन के दिन व्यासजी ने कथन किये हैं ॥

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवासरे ।
व्यतीपातेच संक्रांत्यां दंतकाष्टं नभक्षयेत् ॥

अर्थ-प्रतिपदा अमावस षष्टी नवमी रविवार व्यतीपात और संक्रांतिकेदिन दंतधावन नहीं करणी चाहिये इति॥ इसप्रकार दंतशुद्धि करके तदनन्तर शरीर शुद्धि के लिये स्नान करणा चहिये यह वार्ता याज्ञवल्क्य मुनि ने कथन करी है ॥

अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येव दिवारात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम्॥

अर्थ—यह शरीर अत्यन्त मलिन है और मुख नासिकादि नवद्वारों से दिन रात झरता रहता है सो प्रात.स्नान करणेसे शुद्ध होवे है इसलिये अवश्य प्रातःकालमें स्नान करणा चहिये इति ॥ तथा नागदेवने भी कहा है ॥

अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवंति निष्फलायत:।
प्रातः समाचरेत्स्नानं तच्च नित्य मुपास्थितम् ॥

अर्थ–स्नान किये विना पुरुषकी संध्यातर्पणादि सर्व क्रिया निष्फल होती है इसीलिये अवश्य नित्य ही प्रातःकाल में स्नान करना चाहिये ॥ इति ॥ तथा स्नान करणे योग्य स्थल भी नागदेवने ही कथन किये हैं ॥

वाप्यां कूपे तड़ागे वा नद्यां वा चोष्णवारिणा।
प्रातः स्नानं सदाकुर्या दुष्णेनैव सदातुरः ॥

अर्थ-वापी कूप तलाव अथवा नदीमें जायकर स्नान करणा चाहिये वा घरमें ही नित्य गर्म जलसे स्नान करणा चहिये और रोगीको तो हमेशा गर्मजलसे ही स्नान करणा उचित है इति । परन्तु गर्मजल वर्जन के दिन वृद्ध मनु संहिता में निरूपण किये हैं ॥

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥

अर्थ-रोगादि निमित्तके विना जो केवल शरीरसुखके लिये नित्य गर्मजल से स्नान करता हो तिसको मृतसूतक और जन्मसूतकमें तथा संक्रांतिके दिन श्राद्धके दिन अपने जन्म के दिन और चांडालादि स्पर्शमें चकारसे सूर्य चंद्र ग्रहण में इतने दिनों में गर्मजल से स्नान नहीं करणा चाहिये इति ।। किंच संपूर्ण स्नान करणे में असमर्थ हो तो विना शिर के स्नान करणेसेभी शरीर की शुद्धिहोवे है । यह वार्ता जाबालीऋषी ने प्रतिपादन करी है ।

अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्
आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं दैहिकं विदुः ॥

अर्थ संध्या तर्पणादि कर्म करणे वाले पुरुष जो कदाचित् रोगादि निमित्तसे संपूर्ण स्नान करणे में असमर्थ होवें तो तिनको ि र के विना स्नान कर लेना चाहिये अथवा गीले वस्त्रसे शरीरको मार्जन करलेना चाहिये क्यों कि आपत्काल में सोभी स्नानके तुल्य ही हो

वेहै, इति स्नानकालमें इसमंत्रसे जलमें तीर्थों का आवाहन करणा चाहिये ॥

गंगे च यमुनेचैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्वदे सिंधु कावेरि जलोस्मिन् संनिधिंकुरु॥

अर्थ-हे गंगे यमुने गोदावरि सरस्वति नर्मदे सिंधु और कावेरि तुम सर्व तीर्थ मेरे स्नान के लिये इस जलमें आयकर के निवास करो इति ॥ परंतु भोजन किये पीछे कदाचित् स्नान नहीं करणा चहिये यथा मनुस्मृति में लिखा है ॥

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥

अर्थ—भोजनके अनन्तर शीघ्रस्नान नहीं करणा चहिये तथा अत्यन्त रोगग्रस्त होने से और अर्धरात्री में और सदा वस्त्रों के सहित और विना जाने जलाशय में भी स्नान नहीं करणा चाहिये इति ॥ किंतु रोगादि निमित्तसें स्नान से प्रथम औषधादिक भक्षण करणे में दोष नहीं है तथा चतुर्विंशति मतमें लिखाहै॥

इक्षुरापः फलं मूलं पयस्तांबूलमौषधम् ।
भक्षयित्वापि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः॥

अर्थ-पोंडा जल फल मूल दुग्ध तांबूल औषध इतनी वस्तु भक्षण करणे से पीछे भी स्नानदानादिक कर्म करणेमें दोष नहि है इति॥ इसप्रकार स्नानक्रियासें निवृत्त होकर पश्चात् पवित्र वस्त्र धारण करके मस्तकपर चंदन अथवा विभूतिसें अपनी संप्रदाय के अनुसार तिलक करणा चहिये क्योंकि तिलक किये-विना पुरुषका संध्यादिकर्म में अधिकार नहि होवे है तथा प्रयोगपारिजात में लिखा है॥

ललाटे तिलकं कृत्वा संध्याकर्म समाचरेत् ।
अकृत्वा भालतिलकं तस्य कर्म निरर्थकम्॥

अर्थ-मस्तकपर तिलक करके पश्चात् संध्यादि कर्म करणे उचित हैं क्योंकि भाल तिलकसें विना संध्यादि कर्म निरर्थक अर्थात् संपूर्ण नहि होते हैं इति॥ सो तिलक वैष्णवलोकोंको (ॐ नमो नारायणाय) अथवा (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) इसमंत्रसे करना चहिये

और शैवोंको (ॐ नमः शिवाय) अथवा (त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिंपुष्टिवर्धनं उर्वारुकमिवबंधनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् (इसमंत्रसें करणा चहिये तथा शाक्तलोकोंको (ॐ ह्रीं दुं दुर्गायैनमः अथवा (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुंडायै विच्चे) इसमंत्रसें करणा चहिये अथवा सर्व लोकोंको केवल गायत्रीमंत्रसेंहि तिलक कर लेना चहिये । इसप्रकार तिलक करके पश्चात् ॐ केशवायनमः ॐ नारायणायनमः ॐ माधवायनमः। इनमंत्रों से तीनबार आचमन करके पीछे प्रातःसंध्याका आरंभ करना चहिये सो संध्या की विधि दूसरे ग्रंथों में बहुत विस्तारसे लिखी है परंतु सो सबी करनी आवश्यक नहि है इसलिये यहां संक्षेपसे सारभूत लिखते हैं (अथ संध्याविधिः) सो प्रथम बैठनेके लिये एकांतस्थानमें इसमंत्रसे आसन बिछाना चहिये॥

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

अर्थ—हे पृथिवि तुने सर्व चराचरजगत्को धारण किया हूयाहै और तेरेको विष्णुपरमात्माने धारण किया हूया है सो हे देवि तुं मेरे शरीर को धारण कर और मेरे आसनको पवित्र कर इति ॥ पीछे आसनपर बैठकर प्रथम किंचित् जल हाथमें लेकर इस मंत्रसे अपने शरीर पर छांटना चहिये ॥

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोपि वा ।
यः स्मरेत्पुंडरीकाक्षं स बाह्याभ्यंन्तरः शुचिः ॥

अर्थ—अपवित्र हो अथवा पवित्र हो वा किसी अवस्थामें भी हो परंतु जो पुरुष पुंडरीकाक्षभगवान्का स्मरण करता है सो सर्वदा बाहिर और अंदरसे पवित्र होवे है इति। तिसके पीछे शरीर रक्षाके लिये इसमंत्रसें अपने चारोंतरफ किंचित् जल फेंकना चहिये ॥

अपसर्पंतु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यंतु शिवाज्ञया ॥

अर्थ—जो अदृश्य भूत पृथिवीमें रहतेहैं और जो भूत शुभकर्ममें विघ्न करणहारे हैं सो सर्व भूत

शिवजीकी आज्ञासें इसस्थानसें दूर होवो इति तिसके पीछे ।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अर्थ–ॐ यह परमात्माका नाम और सर्व वेदोंकासार है भूः कहिये पृथिवीलोक भुवः कहिये अंतरिक्षलोक और स्वः कहिये स्वर्गलोक इन तीनोंलोकोंमें परकाशकरनेहारा सूर्यमंडलगत जो परमात्मादेव का पूजनीय तेज है और जो परमात्मादेव हमारी सब जीवों की बुद्धि की वृत्तियों को अंतर्यामि रूप से अंदर से प्रेरणा करता है अर्थात् उत्तेजन देता है उस परमात्मा के तेजोमय स्वरूप का हम ध्यान करते हैं इति ॥ इस गायत्रीमंत्रसे शिखा बंधन करना चहिये तिसके पीछे कुशा अथवा अपने हाथकी अंगुलियों से इन मंत्रोंसें अपने मस्तक और शरीरपर जलसे नौवा मार्जन करना चहिये ।

ॐ आपो हिष्ठामयोभुवः, तानऊर्जेदधातन, महेरणाय चक्षसे, योवः, शिवतमो रसः,

तस्य भाजयते ह्नः, उशतीरिव मातरः, तस्मा अरंगमामवः, यस्यक्त्याय जिन्वथ, आपो जनयथाच नः ॥

अर्थ-हे जलो तुम सुखका स्थानहोसो हमारे में बल और तेजको धारण करो पूजनीय और सुन्दर ज्ञान देवो जो तुमारा कल्याण रूप रस है तिसको हमको भोगने दो श्रेष्ठमाता की न्यांई हमारा पालन करो जिस रसके निवास से तुम प्रजाको तृप्त करते हो उसीकेलिये हम तुमको प्राप्त होते हैं सो हे जलो तुम हमको प्रजा और स्मृद्धि देवो इति। इसप्रकार मार्जन करके पीछे इस मंत्रसे तीन बार पवित्र जल से आचमन करना चाहिये।

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धातपसोध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोऽजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता-यथापूर्वमकल्पयत् दिवंच पृथिवीं चांतारिक्षमथो स्वः ॥

अर्थ–परमात्माके प्रकाशवान् ज्ञानरूप तप से स्थूल सूक्ष्म जगत् उत्पन्न हूया फिर रात्री उत्पन्न हूयी फिर समुद्रजल हूया समुद्रजलसे संवत्सर हूया फिर दिन और रात परमात्माने उत्पन्न किये फिर पहली सृष्टिके समान सूर्य और चन्द्रमा आकाश पृथ्वी अंतरिक्ष और स्वर्ग उत्पन्न किये इति ॥ इसप्रकार मार्जन तथा आचमनसे शरीरकी शुद्धि करके तदनंतर मनकी शुद्धिके लिये तीनवार प्राणायाम करणा चाहिये ॥ सो प्राणायाम पूरक कुंभक और रेचक इसभेदसे तीन प्रकारका होवे है तिनमें प्रथम बामनासापुटसे बाह्यगत प्राणवायुका जो उदर के भीतर आकर्षण करणा है सो पूरक कहिये है तथा तिसभीतर आकर्षण कियेहूये प्राणवा-युका जो यथाशक्ति उदरमेंही रोक रखना है सो कुंभक कहिये है और यथाशक्ति कुंभक करके पश्चात् दक्षिण नासापुटसे शनैः शनैः जो बाहिरको परित्याग करणा है सो रेचक कहिये है ॥ सो कुंभककालमें मनसे इस मंत्रका तीन वार जप करना चाहिये ।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥

प्राणवायुका उदरमें कुंभक करके इस मंत्रको मनमें तीनवार जपनेसे एक प्राणायाम होवे है इति ॥ इसी प्रकार तीनवार प्राणायाम करना चाहिये तिसके पीछे इसमंत्रसे आचमन करना चाहिये ॥

ॐ अंतश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योतीरसोऽमृतम् ॥

अर्थ–हे जल तुम सर्वभूत प्राणियों के अन्दर हृदय में विचरते हो और तुमहि यज्ञ वषट्कार जल ज्योतिरूप रस और अमृतरूप हो इति ॥ तिसके पीछे गायत्रीका इस रीतिसे न्यास ध्यान करना चहिये ।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ कारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछंदः अग्निर्देवता । भूर्भुवः

स्वरिति व्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छंदांसि अग्निवायुसूर्यादेवताः। तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछंदः सविता देवता मम सर्वविधदुरित विनाशपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीतिद्वारा चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपेविनियोगः। (अथ करन्यासः ॐ भूः अंगुष्ठाभ्यांनमः ॐ भुवः तर्जनीभ्यांनमः ॐ स्वः मध्यमाभ्यांनमः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं अनामिकाभ्यांनमः ॐ भर्गोदेवस्य धीमहि कनिष्ठिकाभ्यांनमः ॐ धियोयोनः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यांनमः (अथ हृदयादिन्यासः) ओं भूः हृदयायनमः ओं भुवः शिरसेस्वाहा ओं स्वः शिखायैवषट् ओं तत्सवितुर्वरेण्यं कवचायहुं ओं भर्गोदेवस्यधीमहि नेत्रत्रयावषौट् ओं धियोयोनः प्रचोदयात् अस्त्रायफट् ॥



(अथ ध्यानम्)

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्ष-णैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकटां तत्त्वात्मवर्णात्मि-काम् । गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शंखं चक्रमथारविंदयुगलं हस्तैर्वं-हंतीं भजे ।

अर्थ–मोती मुंगा स्वर्ण नीलमणि और श्वेत वर्णके पांच जिसके मुख हैं और एकएक मुख तीनतीन नेत्रों करके युक्त है और जिसके सि-रमें रत्नोंके मुकुट में चंद्रमाकी कला शोभाय-मान हो रही है तथा जिसके दशहस्तों में वरद् अभय अंकुश चावुक कपाल रुद्राक्षकी माला शंख चक्र और दो कमलके फूल हैं ऐसी जो चौबीसअक्षर रूपवाली गायत्री है तिसका मैं भजन करता हुं इति ।

इसरीतिसे न्यास ध्यानकरके अष्टोत्त-रशत वा यथाशक्ति अवकाशके अनुसार गाय-त्रीका जप करना चहिये । तिसके पीछे सूर्यके स-

न्मुख खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर इस मंत्रसे सूर्यभगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये ॥

ॐ चित्रं देवानामुद्गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अंतरिक्षँ सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

अर्थ-बडा आश्चर्यरूप किरणोंकी सेनाका समूह उदय होनेसे मित्र वरुण और अग्निका नेत्ररूप आकाश पृथिवी और अंतरिक्षमें व्यापक प्रकाशवान् सर्व चराचर जगत्‌का आत्मा वा प्राण रूप सूर्य भगवान् है इति । इसप्रकार स्तुति करके पीछे इस मंत्रसे सूर्य भगवान्‌का आवाहन करना चाहिये ॥

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकंपय मां देव गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥

अर्थ-हेसूर्य हजारों किरणों वाले तेज की राशिरूप सर्व जगत् के पति मेरे पर कृपा कर के यहां आयकर इस अर्घ्यको ग्रहण करो इति । तिसके पीछे तीन वार गायत्री मंत्र बोलकर

गंधपुष्पामिश्रित जल से सूर्यको तीनवार अर्घ्य देना चाहिये इसप्रकार विधिपूर्वक प्रातःसंध्या करनी चाहिये तथा इसीविधिसे सांयकालमेंभी संध्या करनी चाहिये । (इति संध्याविधिः) इसप्रकार द्विजाति पुरुषोंके लिये साधारण संध्याका विधान निरूपण करके अब जिज्ञासु-जनोंके हितार्थ देवता उपासनाकी विधि निरूपण करते हैं सो पूर्वोक्तरीतिसे स्नान मार्जन आचमन प्राणायाम करके एकांतस्थान में स्वस्थचित्त बैठकर प्रथम अपने सद्गुरुका ध्यान करना चाहिये सो ध्यानका प्रकार गरुडपुराण में गरुडके प्रति विष्णुभगवान्ने निरूपण किया है ॥

अधोमुखे ततो रंध्रे सहस्रदलपंकजे ।
हंसगं श्रीगुरुं ध्यायेद्वराभयकरांबुजम् ॥
क्षालितं चिंतयेद्देहं तत्पादामृतधारया ।
पंचोपचारैः संपूज्य प्रणमेत्तत्स्तवेन च ॥

अर्थ-अपने मस्तकके ऊपर अधोमुख ब्रह्म-रंध्रमें सहस्रदल कमलका चिंतन करके तिसके

मध्यमें हंस पक्षीके ऊपर विराजमान हैं और दहने हाथमें वरदान और बामे हाथमें अभय-दान धारण कीयेहूये हैं इसप्रकार तेजोमय अपने श्रीगुरुका ध्यान करके पश्चात् तिनके चरणकमलोंसे अमृतकी धारा पड रही है तिस करके शिखासे लेकर पादपर्यंत अपना सर्व शरीर क्षालित हूया चिंतन करणा चाहिये तद-नंतर पुष्प गंध धूप दीप नैवेद्यादि उपचारों करके मनमें तिनका पूजन और स्तुति करके प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम करणा चाहिये इति॥ इस-प्रकार श्रीगुरुका चिंतन करके पश्चात् अपने हृ-दय कमलमें विष्णु शंकर अथवा दुर्गा जो अपना इष्ट देव होवे तिसका ध्यान करणा चाहिये सो ध्यानकी विधि घेरंडसंहितामें निरूपण करी है॥

स्वकीयहृदये ध्यायेत्सुधासागरमुत्तमम्।
तन्मध्ये रत्नद्वीपं तु सुवर्णवालुकामयम्॥
मालतीमल्लिकाजातीकेशरैश्चंपकैस्तथा।
पारिजातैर्युतं पद्मैर्गंधामोदितदिङ्मुखैः॥
तन्मध्ये संस्मरेद्योगी कल्पवृक्षं मनोहरम्।

चतुर्वेद चतुःशाखं नित्यं पुष्पफलान्वितम् ॥
भ्रमराः कोकिलास्तत्र गुंजंति निगदंति च ।
ध्यायेत्तत्र स्थिरोभूत्वा महामाणिक्यमंडपम् ॥
तन्मध्ये तु स्मरेद्योगी पर्यंकं सुमनोहरम् ।
तत्रेष्टदेवतां ध्यायेद्यद्ध्यानं गुरुभाषितम् ॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्रूपं तु तथा ध्यायेद्योगी सुस्थिरमानसः ॥

अर्थ—प्रथम अपने हृदयकमल में अमृतमय समुद्रका चिंतन करके पश्चात् तिस समुद्र के मध्य भागमें एक रत्नमय विस्तृत द्वीपका चिंतन करणा चाहिये तिस द्वीपकी सर्व बालुका सुवर्णमय है और मालती मल्लिका जाती केशर चंपक पारिजात इत्यादि पुष्पयुक्त वृक्षोंकरके सो द्वीप चारोंतरफसे शोभायमान हो रहा है तथा सर्व दिशायोंमें कमलोंकी सुगंध प्रसर रही है इसप्रकार चिंतन करके पाश्चत् तिस द्वीपके मध्यभागमें कल्पवृक्षोंके वनमें एक बडा सुंदर विस्तृत कल्पवृक्ष है तिस वृक्षकी चारों वेदरूप चार विस्तृतशाखा हैं और सर्वदा सर्वतरफसे

पुष्प और फलोंकरके पूर्ण हो रहा है तिसकी शाखोंपर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं और कोकिलादिक सुंदर पक्षी मनोहर गायन कर रहे हैं इसप्रकार चिंतन करके पश्चात् स्थिरचित्त होकर तिस कल्पवृक्षके नीचे एक विपुल विस्तारयुक्त मणिमय मंडपका चिंतन करणा चहिये तिस मंडपके मध्यमें एक अति सुंदर मनोहर रत्नमय सिंहासन बिछाहूया है तिस सिंहासनके ऊपर विष्णु शंकर अथवा शक्ति जो अपना इष्ट देव होवे और जिसप्रकार तिस देवताका ध्यान और स्वरूप भूषण वाहनादिक शास्त्रोंमें लिखेहों तथा अपने गुरूने बताये होंवे तिसीप्रकारसें स्थिरचित्त होकर के ध्यान करणा चहिये इति ॥ तिनमें जिज्ञासु जनोंके हितार्थ प्रथम विष्णुभगवान्के ध्यानकी विधि निरूपण करते हैं ।. सो पूर्वोक्त रत्नमय सिंहासनके ऊपर साक्षात् विष्णुभगवान् विराजमान हो रहे हैं कोटि सूर्योंके समान तेजोमय जिनके शरीरकी प्रभा है मंद मंद हस रहे हैं चरणोंमें कांचनके नूपुर शोभायमान हैं रेश्मी पीतांबर पहरे हूये हैं कटिमें मणियोंकी

तडागी विराज रही है कंठमें कौस्तुभ मणियोंका हार और वनमाला पहरे हूये हैं चारों भुजामें शंख चक्र गदा पद्म धारण किये हूये हैं कानोंमें मकराकृति कुंडल चमकरहे हैं मस्तकपर मणि-जडित कांचनमय मुकुट धारण किये हूये हैं वाम अंक में लक्ष्मीजी विराजमान हो रही हैं, शिरके ऊपर शेषनागके सहस्रफणोंका छत्र शोभाय-मान हो रहा है सिंहासनके अग्रभागमें गरु-ड़जी हाथ जोड़े खड़े हुये हैं और सिंहासनके दोनोंतरफ नंदसुनंदादि पार्षद चमर कर रहे हैं सिंहासनके चारोंतरफ ब्रह्मा इन्द्रादि देवता और सनकादि नारदादि ऋषिलोक स्तुति कर रहे हैं इसप्रकार चिन्तन करके पश्चात गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्यादि उपचारों से सर्व परिवार सहित क्रमसें भगवान्का मनसें पूजन करणा चाहिये पश्चात् प्रदक्षिणा करके सुन्दरस्तोत्र अथवा वेदके मन्त्रोंसें स्तुति करके प्रार्थना करणी चहिये इति ॥

तथा शैवलोकोंको पूर्वोक्त सिंहासनपर शंकर का चिन्तन करणा चाहिये सो कर्पूरके समान

जिनके शरीरका वर्ण है सर्व अंगोंमें सुन्दर विभूति लग रही है कटिमें नागों का तडाग बंध लग रहा है व्याघ्रचर्मका कटिवस्त्र पहरे हूये हैं चारों भुजामें सर्पोंके मणिबंध पहरे हूये हैं हाथोंमें त्रिशूल परशु अभय वरदान धारण किये हूये हैं विषपान करणेसें ग्रीवाका भाग नीलवर्ण हो रहा है कानोंमें सुन्दर कुण्डल चमक रहे हैं मस्तकमें तीसरा नेत्र और चद्र-कला शोभायमान हो रही है शिरके ऊपर जटा कलापमेंसे गंगाकी निर्मल धारा चल रही है वामें अंकमें पार्वतीजी विराजमान है सिंहासन के अग्रभागमें नंदीगण हाथ जोड़े खड़े हूये हैं और सिंहासनके दहने बाजूमें कार्तिकेय और वामें बाजूमें गणेशजी हाथोंमें चमर लिये खड़े हूये हैं तथा सिंहासनके चारोंतरफ ब्रह्मा इन्द्रादि देवता और सनकादि नारदादि ऋ-षिलोक स्तुनि कर रहे हैं ॥ इसप्रकार चिन्तन करके पूर्वोक्त रीतिसें गंध पुष्पादिकोंसे सर्व परिवार सहित क्रमसें शिवजीका मनसें पू-

जन करणा चहिये पश्चात् प्रदक्षिणा करके स्तुति और प्रार्थना करणी चहिये इति ॥

तथा शाक्त लोकोंको पूर्वोक्त सिंहासनके ऊपर भगवती दुर्गाका चिन्तन करणा चहिये सो जैसे सुवर्णके समान जिसके शरीरकी उज्वल कांतिहै चरणोंमें कांचनके दिव्य नूपुर झणतकार शब्द कर रहे हैं लाल रंगके सुंदर रेश्मी वस्त्र पहरे हुये हैं कटिमें मणियोंकी तड़ागी शोभायमान हो रही है कंठमें दिव्य मोतियोंके हार पहरे हूये हैं चारों भुजामें मणिमय कंकण और बाजुबंध धारण किये हूये हैं कमलके पत्रसमान विस्तृत तीन नेत्र हैं मस्तकपर मणिजड़ित कांचनका मुकुट विराजमान है शिरके ऊपर सुवर्णका छत्र भ्रमण हो रहा है सिंहासन के अग्रभागमें केसरी सिंह नम्र भावसे खड़ा हूया है और सिंहासनकी दोनोंतरफ जया विजयादि शक्तियां चमर लिये खड़ी हूई हैं तथा सिंहासनके चारोंतरफ ब्रह्मा इन्द्रादि देवता और सनकादि नारदादि ऋषिलोक स्तुति

कर रहे हैं इसप्रकार चिंतन करके पूर्वोक्त रीति सें गंधपुष्पादि उपचारोंसें सपरिवार क्रमसें भगवतीका मनसें पूजन करणा चहिये पश्चात् प्रदक्षिणा करके स्तुति और प्रार्थना करणी चहिये इति ॥

इसप्रकार अपने इष्ट देवका ध्यान और मानस पूजन करके पश्चात् इष्टदेवके मन्त्रका जप करणा चहिये सो जप उच्चैः उपांशु और मानस इस भेद से तीन प्रकारका होवे है तिनमें जप करते वक्त जो समीपके दूसरे लोकों के भी श्रवण पड़े सो उच्चैः कहिये है और जो दूसरे लोकोंके श्रवण नहिं पड़े किन्तु केवल अपने मुखमेंहि उच्चारण होवे सो उपांशु कहिये है और जो मुखसें विना केवल मनमेंहि मंत्रका उच्चारण होवे सो मानस जप कहिये है तिनमें उच्चैःसे उपांशुजपका हजारगुणा फल होवे है और उपांशुसे मानसिक जपका सहस्त्रगुणा फल अधिक होवे है सो प्रथम वैष्णव लोकोंके लिये जपका विधान निरूपण करे हैं ॥ सर्व

वैष्णव मंत्रों में द्वादशाक्षर मंत्र मुख्य है तिसका न्यास ध्यान भी जिज्ञासु लोकोंके हितार्थ यहां लिखते हैं ॥

(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)

अस्य श्रीद्वादशाक्षरमहामंत्रस्य प्रजापतिः ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीविष्णुः परमात्मा देवता मम सर्वपापविनाशपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥

(अथ करन्यासः)

ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः नमो तर्जनीभ्यां नमः भगवते मध्यमाभ्यां नमः वासुदेवाय अनामिकाभ्यां नमः ॐनमोभगवते कनिष्ठिकाभ्यां नमः वासुदेवाय करतलकरपृष्ठभ्यां नमः ॥

(अथ हृदयादिन्यासः)

ॐहृदयाय नमः नमो, शिरसे स्वाहा भगवते शिखायै वषट् वासुदेवाय कवचाय हुं ॐनमोभगवते नेत्राभ्यां वौषट् वासुदेवाय अस्त्राय फट् ॥

(अथ ध्यानम्)

विष्णुं शारदचंद्रकोटिसदृशं शंखं रथांगं गदामंभोजं दधतं सिताब्जनिलयं कांत्या जगन्मोहनम् ॥ आबद्धांगदहारकुंडलमहामौलिं स्फुरत्कंकणं श्रीवत्सांकमुदारकौस्तुभधरं वंदे मुनीन्द्रैः स्तुतम् ॥

अर्थ–शरदऋतु के कोठि चन्द्रमा के समान है तेज जिनका और जो चारों हाथों में शंख चक्र गदा पद्म को धारण किये हुए अपनी सुन्दर कान्ति सें सर्व जगत् के मोहन करनेहारे हैं और बाजुबन्द हार कुंडल मुकट कंकण श्रीवत्स कौस्तुभमणि सें शोभायमान हो रहे हैं ऐसे जो श्वेत कमल के ऊपर विराजमान चारों तरफ सें देवता मुनीश्वरों करके स्तुति किये हुये विष्णु भगवान् हैं तिनको मैं बंदना करता हूं इति ।

इस मंत्रका बारा लक्ष जप करणेसें एक पुरश्चरण पूर्ण होवे है इति ॥ तथा शैवलोकोंके लिये मुख्य पंचाक्षरमंत्र है तिसका न्यास

ध्यान भी जिज्ञासु लोंकोके हितार्थ यहां लिखते हैं ॥

(ॐ नमः शिवाय)

अस्य मंत्रस्य वामदेव ऋषिः पंक्तिः छन्दः श्रीसदाशिवो देवता मम सर्वविधपापक्षयपूर्वकं श्रीमहेश्वरप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥

(अथ करन्यासः)

ॐ अंगुष्ठभ्यां नमः नं तर्जनीभ्यां नमः मं मध्यमाभ्यां नमः शिं अनामिकाभ्यां नमः वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

(अथ हृदयादिन्यासः)

ॐ हृदयाय नमः नं शिरसे स्वाहा मं शिखायै वषट् शिं कवचाय हुं वां नेत्रत्रयाय वौषट् यं अस्त्राय फट् ॥

(अथ ध्यानम)

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचंद्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥ पद्मासीनं समंतात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्ववंद्यं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

अर्थ-चांदी के पर्वत के समान गौर वर्ण और चन्द्रमा मस्तक में धारण किये हुये रत्नों के जडे हूये भूषणों सें प्रकाशमान शरीर वाले और परशु मृग वरदान अभयदान हाथों में धारण किये हुये चारों तरफ सें देवताओं करके स्तुति किये हुये और व्याघ्र चर्म पहने हूये सर्व विश्व के आदि और सर्व विश्व करके वंदनीय भक्तजनों के सर्व भय हरने वाले जो कमल के ऊपर विराजमान पंच मुखवाले महादेव हैं तिन का ध्यान करना चाहिये इति ।

इस मंत्रका पांच लक्ष जप करणेसें एक पुरश्चरण पूर्ण होवे है इति ॥ तथा शाक्तिक लोकों-के लिये सर्व मंत्रोंमें अष्टाक्षर मंत्र श्रेष्ठ है तिसका न्यास ध्यानभी जिज्ञासु लोकोंके हितार्थ यहां लिखते हैं ॥

(ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः)

अस्य मंत्रस्य नारद ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्री भगवती दुर्गा देवता ह्रीं बीजं नमः शक्तिः मम सर्वदुरितक्षयपूर्वकं श्रीभगवतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥

(अथ करन्यासः)

ॐ ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः ॐ दुं तर्जनीभ्यां नमः ॐ दुं मध्यमाभ्यां नमः ॐ गां अनामिकाभ्यां नमः ॐ यैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐ नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥

(अथ हृदयादिन्यासः)

ॐ ह्रीं हृदयाय नमः ॐ दुं शिरसे स्वाहा ॐ दुं शिखायै वषट् ॐ गां कवचाय हुं ॐ यैं नेत्रत्रयाय वौषट् ॐ नमः अस्त्राय फट् ॥

(अथ ध्यानम्)

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः शंखं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता ॥ आमुक्तांगदहारकंकणरणत्कांचीक्वणन्नूपुरा दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु वो रत्नोल्लसत्कुंडला ॥

अर्थ–सिंह के ऊपर सवार मस्तकमै चंद्रमा धारण किये हूये हरितमणि के समान चारभुजों में शंख चक्र धनुषबाण धारण किये हूये तीन नेत्रों सें शोभायमान बाजुबन्द हार कंकण तडा-

गी चरणों में नूपर धारण करनेहारी कानों में रत्नों के कुंडल धारण किये हूये ऐसी जो दुर्गा भगवती है सो तुमारे सर्व दुःखों को हरण करने वाली होवे इति ।

इस मंत्रका आठ लक्ष जप करणे से एक पुरश्चरण पूर्ण होवे है इति ॥

यद्यपि बिना न्यास ध्यानके केवल मंत्रका जप करणे से भी यथोक्ति फल की प्राप्ति होवे है तथापि न्यास ध्यानपूर्वक करणे से अधिक फल की प्राप्ति होवे है ॥ सो यद्यपि केवल जिज्ञासु लोकों के जानने के लिये हमने पूर्वोक्त मंत्रोंके न्यास ध्यान लिखे हैं तथापि हितेच्छु पुरषों को गुरमुखसेहि मंत्रका विधिवत् उपदेश ग्रहण करके पश्चात् जप करणा चाहिये

तथा मंत्र सिद्ध करणे की युक्तियोंभी गुरमुखसेहि जाननी चहिये क्युंकि गुरके उपदेश बिना जपादि करणा सर्व निष्फल होवे है ॥ इस प्रकार यथाशक्ति अवकाश के अनुसार जप करके तिसके अंतमें आचमन करके पश्चात्

हाथमें किंचित् जल लेकर इस मंत्रसे अपने इष्टदेव कों जप समर्पण करणा चहिये ॥

ॐगुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥

अर्थ—हे देव आप गुह्य सेभी गुह्यवस्तु के जानने और रक्षण करणे हारे हो सो आप हमारे किये हुए इस जपको ग्रहण कीजिये और हे सुरेश्वर तुमारी कृपासें हमारेको अभीष्ट सिद्धिकी प्राप्ति होवे इति ॥ वैष्णव और शैव लोकोंके लिये तो इस मंत्रका पाठ ठीक है और शाक्त लोकोंको 'ॐगुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतुमेदेवित्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि' इस प्रकार से बोलना चहिये ॥ और जो जप करणे के समयमें किसीसे अवश्य भाषण करणा पड़े अथवा नीचे से अपान वायुका सरण होजावे तो अपने दाहिने कान को स्पर्श और आचमन करके पुनः जप का आरम्भ करणा चहिये ॥ और जपकी समाप्ति के अनन्तर जो अधिक अवकाश हो तो भग-

वत्‌गीता विष्णुसहस्रनाम रुद्रीय माहिम्न चंडी-
पाठ इत्यादि यथारुचि स्तोत्रोंका पाठ करणा
चहिये सो पाठभी गुरमुखद्वारा शुद्ध पठन
करकेहि करणा चहिये क्युंकि अशुद्ध पाठ कर-
णेसें यथोक्ति फल की प्राप्ति नहीं होवेहै ॥ इस
प्रकार सर्व पूर्वोक्त रीतिसे नित्य प्रति विवेकी
पुरुषोंको प्रातःकालमें आचरण करणा चहिये ॥
यहांतक ईश्वरके सगुण स्वरूपकी उपासनाका
प्रकार निरूपण किया सो जब कुछ काल पर्यंत
सगुण उपसाना करनेसे पुरुषका अन्तःकरण
निर्मल होजावे तो पीछे साथ साथ ईश्वरके
निर्गुण स्वरूपकी भी उपासना करनी चहिये
तो तिसकी बिधिभी संक्षेपसे यहां कथन
करते हैं सत्‌चित्‌आनन्दमय ईश्वर का निर्गुण
स्वरूप हैं सो ईश्वर सर्वव्यापक अव्यक्त अनंत
अविनाशी सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् सर्व जगत्
की उत्पत्ति पालन और नाश करने हारा सर्व
जीवोंका प्रेरक अन्तर्यामी और अधिपति है
इसप्रकार ईश्वरके स्वरूपको जानकर उपासना
करनी चहिये सो ईश्वरकी उपासनाके वेदशा-

ओंमें दो प्रकार मुख्य कथन किये हैं एक तो ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करणा और दूसरा ओंकारका जप करना तिनमें ध्यानकी विधि यह है कि प्रथम स्नानादिसे पवित्र होकर एकांत स्थानमें आसन जमाकर मनकी वृत्ति को सब तरफसे रोककरके अपनी दोनों भुवों के बीचमें जलते हुये दीपक के समान अचल परमदिव्य ज्योतिःस्वरूप ईश्वरका ध्यान करना चहिये उस ज्योतिसे अपने सारे शरीरके अंदर चेतनताका विस्तार समझना चहिये तथा बाहिर सूर्य चंद्रमा तारे विजली अग्नि आदि में भी उसीका प्रकाश जानना चहिये इस प्रकारसे ध्यान करके पीछे मनसे पुष्पचंदनादि कोंसे तिस ज्योतिःस्वरूप ईश्वरका पूजन करना चहिये तथा नम्रभावसे प्रार्थना करनी चहिये फिर ध्यानके पीछे ओंकारका जप करना चहिये क्योंकि निर्गुण ईश्वरका ओंकारही मुख्य मंत्र है सो ओंकारका न्यास ध्यान इसप्रकार है ॥

अस्यश्री प्रणवमहामंत्रस्य ब्रह्माऋषिर्गाय-
त्रिछन्दः श्रीपरब्रह्मपरमात्मादेवता मम सर्व-
पापविनाशपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थें जपे वि-
नियोगः ।

(अथ करन्यासः)

ॐअकाराय अंगुष्ठाभ्यांनमः ॐउकाराय
तर्जनीभ्यांनमः ॐमकाराय मध्यमाभ्यांनमः
ॐअकाराय अनामिकाभ्यांनम ॐउकाराय
कनिष्ठिकाभ्यांनम ॐमकाराय करतलकरपृ-
ष्ठाभ्यांनमः ।

(अथ हृदयादिन्यासः)

ॐअकाराय हृदयायनमः ॐउकाराय शि-
रसेस्वाहा ॐमकाराय शिखायैवषट् ॐअका-
राय कवचायहुं ॐउकाराय नेत्रत्रयायवौषट्
ॐमकाराय अस्त्रायफट् ।

(अथ ध्यानम्)

ओंकारंनिगमैकवेद्यमनिशं वेदांततत्त्वास्पदं
सम्भूतिस्थितिनाशहेतुममलं विश्वस्य विश्वा-
त्मकं । विश्वत्राणपरायणं श्रुतिशतैः संप्रोच्य-

मानं प्रभुं सत्यं ज्ञानमनंतमूर्तिमचलं शुद्धा-
त्मकं तं भजे ।

इस प्रकार न्यासध्यानकरके यथाशक्ति ओंकार का जप करके फिर इस मंत्रसे ईश्वरको अर्पण करना चहिये ॥

ॐगुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
प्रसादं कुरु देवेश सर्वेश्वरनमोस्तुते ॥

तदनंतर पुरुषसूक्त आदिवेदमंत्रोंसें ईश्वर की स्तुति करनी चाहिये ॥ इसप्रकार दिनके प्रथम प्रहरमें नित्यनियम करके पश्चात् अपने शरीरकी रक्षाके लिये और कुटुंबपारिवारकी पालनाके लिये तथा सुपात्र अतिथियों के सत्कार करणेके वास्ते विवेकी पुरुषोंको शास्त्र-संमत रीतिसें अपने अधिकारके अनुसार द्रव्य-उपार्जन करणेके लिये देशकालानुसार यथो-चित प्रयत्न करणा चाहिये क्युंकि गृहस्थाश्रम में द्रव्यउपार्जनके विना पूर्वोक्त जप ध्यानादिक कर्म स्वस्थचित्त होकर नहि हो सकते हैं तथा

विशेष धर्मका संचयभी नहि हो सकता है इसलिए बुद्धिमान् पुरुषको अवश्य द्रव्य उपार्जनके निमित्त प्रयत्न करणा उचित है ॥ यद्यपि मनुस्मृतिआदि धर्मशास्त्रोंमें ब्राह्मणोंके लिए वेदाध्ययन कराना यज्ञ कराना दान लेना और क्षत्रियोंके लिए युद्ध करना प्रजाका रक्षण करणा तिनसे कर लेना तथा वैश्योंके लिए व्यापार करणा पशुवोंकी पालना करणी और शूद्रोंके लिए तीनों वर्णोंकी सेवा करणी नौकरी करणी इत्यादि भिन्न भिन्न द्रव्यउपार्जनके उपाय विधान किये हैं परन्तु इसकालमे तिनका यथावत् नियम होना कठिन है इसलिए विवेकी पुरुषोंको जो उपाय अपने देश तथा कालके अनुसार अनुकूल होवे तिसी उपाय से द्रव्य-उपार्जन करना उचित है परन्तु सो उपाय शास्त्रसे विशेष विरुद्ध नहि होना चहिये क्युंकि कल्याणाकांक्षी पुरुषोंको शास्त्रविरुद्ध मार्गसे द्रव्यउपार्जन करना उचित नहि है ॥ और जिन पुरुषोंको द्रव्यपात्र होनेसे अथवा त्यागी होनेसें वा असमर्थ होनेसे द्रव्यउपार्जनकी

आवश्यकता नहि है तो तिनको जपादि विशेषकरके अथवा कथावार्ता सत्संगादि शुभ कार्योंमें सो काल व्यतीत करना चाहिये ॥ तदनंतर गृहमें आयकरके भोजन करणा चहिये यद्यपि केचित् लोक भोजन करणेके बकत पुनः स्नान करते हैं सो केवल देशाचारकी बात है परन्तु तिसकी कुछ आवश्यकता नहि है केवल हस्तपादप्रक्षालन जरूर करलेने चहिये यह वार्ता व्यासजीने कथन करी है ॥

पंचार्द्रो भोजनं कुर्यात् प्राङ्मुखो मौनमाश्रितः।
हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषु पंचार्द्रता मता ॥

अर्थ–दोनों हाथ दोनों चरण और एक मुख यह पांच अंग गीले करके अर्थात् जलमें प्रक्षालन करके पश्चात् पूर्वदिशाकी सन्मुख बैठकरके भोजन करणा चहिये इति ॥ कदाचित् दक्षिणाभिमुख अथवा पश्चिमाभिमुख बैठकरके भोजन करे तो हानि नहि है परन्तु उत्तरदिशाके सन्मुख कदाचित् नहि बैठना चहिये सो भोजन दोनों जानुवोंके भीतर हाथ

रखकर करना चहिये यह वार्ता बौधायन ऋषिने कथन करी है ।

भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः ।
बहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् ॥

अर्थ--भोजन करणा, होम करणा, दान देना, भेट करणा, दान लेना, तथा आचमन करणा इतने कार्य जानुसें बाहिर हाथ रखकर नहि करणे चहिये इति ॥ तथा सो भोजन केवल दहने हाथ सेंही भक्षण करणा चहिये वामेसें नहि यह वार्ता बृहस्पतिसंहितामें कथन करी है ॥

न स्पृशेद्वामहस्तेन भुंजानोऽन्नं कदाचन ।
न पादौ न शिरो बस्तिं न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥

अर्थ--भोजन करता हुया पुरुष वामहस्तकरके अन्नको स्पर्श नहि करे तथा चरण शिर और लिंगदेशकोभी स्पर्श नहि करे और अन्नके पात्रको चरणोंसे कभी स्पर्श नहि करे इति ॥ तथा एक दिनमें दोवारसें अधिक बार भोजन नहि करणा चहिये यह वार्ता मनुजीने निरूपण करी है ॥

सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नांतरा भोजनं कुर्या दग्निहोत्रसमो विधिः ॥

अर्थ-ब्राह्मणादि द्विजाति पुरुषोंको प्रातः और सायंकाल दिनमें दोवारही भोजन करणा वेदाविहित है याते पुनः बीचमें भोजन करणा योग्य नहि है यह अग्निहोत्रके समान विधि है अर्थात् तिस पुरुषको अग्निहोत्र के समान फल होवे है इति ॥ परन्तु फल दुग्ध और औषधि लेने में दोष नहि है ॥ किंच दरिद्राव-स्थाके विना लोहेके पात्रमें कदाचित् भोजन नहि करणा चहिये यह वार्ता आत्रिसंहिता में कथन करी है ॥

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपनीयिते ।
तदन्नमपवित्रं स्यात् त्याज्यं वै सर्वकर्मसु ॥

अर्थ-लोहेके पात्रमें वा लोहेके पात्रसें जो अन्न पुरसा जावे है सो अपवित्र होवे है यातें श्राद्धादिक सर्व कर्मों में तिसका परित्याग करणा चहिये इति ॥ तथा भोजन की वस्तुवों

को पुरसनेवकत हाथ में नहि लेना चाहिये यह वार्ता पैठीनसि ऋषिने कथन करी है ॥

लवणं व्यंजनं चैव घृतं तैलं तथैव च ।
लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ॥

अर्थ-निमक शाक घृत तैल तथा नानाप्रकार के जो चाटने और पीनेके पदार्थ हैं सो हाथमें दिये हुये भक्षण नहि करने चहिये अर्थात् पात्र में लेकर भक्षण करने योग्य हैं इति ॥ तथा पुरसतेवकत अन्न को देखकरके स्तुति करणी चहिये यह वार्ता मनुस्मृतिमें कथन करी है ॥

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनंदेच्च सर्वशः ॥

अर्थ-अन्नका नित्यही पूजन अर्थात् आदर करणा चहिये और भोजन करते वकत तिसमें से किसी वस्तुकी निंदा नहि करणी चाहिये किंतु अन्नको देखकर हर्ष करणा और प्रसन्न होना चहिये और सर्व प्रकार सें स्तुति करणी

चाहिये इति ॥ सो स्तुतिका प्रकार यजुर्वेदकी तैत्तिरीयउपनिषत् में निरूपण किया है ॥

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायंते याः काश्चपृथिवीं श्रिताः ।
अन्नंहि भूतानां ज्येष्ठं तस्मात् सर्वौषधमुच्यते ।
अथोन्नेनैव जीवंति अथैनदपि यंत्यंततः ॥
सर्वं वै तेन्नमाप्नुवंति येन्नं ब्रह्मेत्युपासते ।

अर्थ-यावत् मात्र पृथिवी पर प्रजा है सो सर्व अन्नसेंही उत्पन्न होवे हैं और पश्चात् अन्नसेंहि जीवे हैं तथा अंतमें अन्नरूप पृथिवीमें ही लीन होवे हैं और अन्नही सर्व भूतप्राणियों सें ज्येष्ठ है इसलियें इसको सर्वौषधरूप कहते हैं इस प्रकार सें जो पुरुष अन्नको ब्रह्मरूप जानकर उपासना करते हैं तिनको सर्व प्रकार से अन्नकी प्राप्ति होवे है इति ॥ तथा गीतामें भी भगवान् ने कथन किया है ॥

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

कर्म ब्रह्मोभ्द्वं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुभ्द्वम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

अर्थ सर्वभूतप्राणि अन्नसें उत्पन्न होवे हैं और अन्न वर्षा सें उत्पन्न होवे है और वर्षा यज्ञ से होवे है और यज्ञ कर्मसे होवे है और कर्मका विधान वेद से होवे है सो वेद ब्रह्मसे उत्पन्न होवे है सो ब्रह्म सर्वव्यापक है और नित्यही यज्ञमें स्थित रहता है इति ॥ इसप्रकार परंपरा सें ब्रह्मसे उत्पन्न होने तें अन्नभी ब्रह्मरूपही है ॥ इसप्रकार अन्नकी स्तुति करके पश्चात् इस मंत्रसें अन्न पात्र के चारों तरफ मंडल करना चहिये ॥

यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूराश्चैव तु राक्षसाः ।
हरंति रसमन्नस्य मंडलेन विवर्जितम् ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च श्रीर्हुताशन एव च ॥
मंडलान्युपजीवंति तस्मात् कुर्वीत मंडलम् ॥

अर्थ–यातुधान पिशाच और क्रूर राक्षस जो अदृश्य विचरणेहारे हैं सो मंडल करने से विना अन्न का रस हरण कर लेते हैं अर्थात्

अन्न को उच्छिष्ट कर देते हैं इसलिये अवश्य मंडल करणा चहिये किंच ब्रह्मा विष्णु रुद्र लक्ष्मी और अग्नि यह सर्व देवता मंडल के आश्रय रहते हैं इसलिये भी अवश्य मंडल करणा योग्य है इति ॥ इस प्रकार मंडल करके पश्चात् (ॐ सत्यंत्वर्तेन परिषिंचामि नमः) इस मंत्र सें किंचित् जलमें अन्नका प्रोक्षण करणा चहिये तदनंनर अन्नपात्रकी दहनी तरफ (ॐ भूपतये स्वाहा ॐ भुवनपतये स्वाहा ॐ भूतानां पतये स्वाहा) इन तीन मंत्रों से तीन आहुती अन्न की पृथिवीपर देनी चहिये तिनके ऊपर किंचित् जलभी डालना चहिये (इस तीन आहुतियों का अन्न भोजनानंनर गौ को देना चहिये। (ॐ अमृतोपस्तरणमसि) इस मंत्रसें आचमनकरके (ॐ प्राणाय स्वाहा ॐ अपानाय स्वाहा ॐ व्यानाय स्वाहा ॐ समानाय स्वाहा ॐ उदानाय स्वाहा) इन पांच मत्रोंसें प्रथम पांच ग्रास मौनकरके भक्षण करणे चहिये तदनंतर वामे हाथकी अंगुलियोंसे नेत्रोंको जल स्पर्शकरके पश्चात्

रुचिअनुसार शास्त्रसंमत भोजन करणा चहिये तदनंतर उठकर पवित्र जलसे मुख प्रक्षालन करके मुखशुद्धि के लिये तांबूल इलायची लवंगादि भक्षण करके इस श्लोकसे तीनवार अपने पेटपर दहना हाथ फिराणा चहिये ।

अगस्त्यं वैनतैयं च शनिं च वडवानलम् ।
अन्नस्य परिणामार्थं स्मरेद्भीमं च पंचमम् ॥

अर्थ–अगस्त्यऋषि गरुड शनैश्चर वडवानल और भीमसेन इन पांचोंका सुखपूर्वक अन्न पचनें के लिये भोजन के अंत में स्मरण करणा चहिये इति ॥ यद्यपि भोजन प्रकरण में वैश्वदेवकर्मकी भी आवश्यकता है तथापि इसकालमें तिसका प्रचार बहुत कमती होने सें यहां तिसकी विधि नहीं लिखी है परन्तु अपेक्षावाले पुरुषोंको दूसरे ग्रन्थोंसे देखकर करलेना उचित है ॥ इस प्रकार भोजन सें निवृत होकर पश्चात् सत्शास्त्रों का अवलोकन करणा चहिये यह वार्ता आत्रिसंहितामें कथन करी है ॥

भोजनानंतरं कुर्यान्मोक्षशास्त्रानुचिंतनम् ।
इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ।
वृथा विवादवाक्यानि परिवादांश्च वर्जयेत्

अर्थ-भोजनके अनंतर मोक्षसंबंधी जो वेदांत शास्त्र है तिनका अवलोकन करना चहिये तथा महाभारत इतिहास और भागवतादि पुराण और मनुस्मृतिआदि धर्मशास्त्रोंका भी अभ्यास करणा चहिये । वृथा खंडनमंडनादि शुष्क विवाद और दूसरों की निंदा नहि करणा चहिये इति ॥ तथा भोजनानंतर शयन करणे काभी अत्रिऋषि नेहि निषेध किया है ॥

दिवा स्वापं न कुर्वीत स्त्रियं चैव विवर्जयेत् ।
आयुर्हंति दिवा निद्रा दिवा स्त्री पुण्यनाशिनी ॥

अर्थ-दिनमें शयन नहि करणा चहिये तथा स्त्रीसंगमभी नहि करणा चहिये क्योंकि दिनमें शयन करणे से आयु क्षीण होवे है और स्त्रीसंगम करणे सें पुण्य का नाशहोवे है इति । परंतु अजीर्ण शूल अतिसारादि रोगके कारण

से अथवा रात्रिमें जागरण होनेसे अथवा ग्री-
ष्मऋतु में दिनमें शयन करणे में दोष नहि है
इसप्रकार शास्त्रावलोकनसें मध्यान्हकाल व्य-
तीत करके तदनंतर फिर द्रव्यउपार्जनके लिये
देशकाल और अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रसं-
मतरीतिसे व्यापारादि प्रयत्न करणा चाहिये।
यद्यपि जगत्में द्रव्य उपार्जनकरणे के अनेक
प्रकारके उपाय प्रसिद्ध हैं यहां तिन सर्वके
निरूपण करणेकी कुछ आवश्यकता नहिहै परंतु
जिस उपाय सें धर्मकी विशेष हानि होवे तिस
उपायसें जो अधिक लाभभी होवे तो विवेकी
पुरुषों को तिसका परित्याग करदेना चहिये
इसमें पिता पितामहादि परंपराका हठ ग्रहण
करणा योग्य नहि है ॥ तदनंतर जब एक मुहूर्त
दिन अवशेष रहे तिस कालमें सर्व व्यवहारों
से निवृत्तहोकर ग्रामके भीतर अथवा बाहिर
जो देवमंदिर होवें तहां दर्शन के निमित्त
जाना चाहिये और जहां विद्वानों की सभा
अथवा सत्शास्त्रोंकी कथा कीर्तन होवे तहांभी
जाना चहिये तथा अपने कुलगुरु और कुलवृ-

द्धोंके समीप भी जाना चहिये क्योंकि देवता और विद्वानों के दर्शनस्पर्शन करणे सें पुण्यकी प्राप्ति होवे है यह वार्ता दक्षसंहितामें कथन करी है ।

ग्रामे च यान्यगाराणि देवतानां तदीक्षणात् ।
लोकयात्रेति कथिता तां कुर्वन् पुण्यभाग्भवेत् ॥

अर्थ ग्रामके भीतर तथा बाहिर जो जो देवताओं के मंदिर होवें तिनके दर्शन करणे को लोकयात्रा कहते हैं तिसके नित्यप्रति करणे से पुरुष पुण्यका भागी होवे है इति ॥ तदनंतर सूर्यके अस्त समय में ग्रामके बाहिर सरोवर या नदीके तीर पर अथवा देवमंदिरमें सायंसंध्या वंदनकरके पश्चात् अपने स्थानमें आयकर दीपक जलाना चाहिये अथवा जलते हुये दीपक को देखकर इस मंत्र सें नमस्कार करणा चाहिये ॥

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः ।
दीपो हरतु मे पापं संध्यादीप नमोऽस्तु ते ॥

अर्थ-यह ज्योतिःस्वरूप दीपक परब्रह्मरूप है तथा ज्योतिःस्वरूप दीपक विष्णुस्वरूप है सो यह दीपक मेरे पापों को हरण करे है संध्यादीपक तुमारे को मेरी नमस्कार हो इति ॥ सो दीपक का मुख सर्वदा पूर्व अथवा उत्तरदिशाको तरफ रखना चहिये तथा सामर्थ्य होवे तो सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय पर्यंत सर्व रात्री पर्यंत घरमें दीपक जलाना चहिये ॥ यह वार्ता मरीचिऋषिने कथन करी है ॥

रवेरस्तं समारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत् ।
यस्य तिष्ठेद्गृहे दीपस्तस्य नास्ति दारिद्रता ॥

अर्थ—सूर्यास्त समय से लेकर प्रातःकाल सूर्योदयपर्यंत जिसके घर में दीपक जलता रहता है तिस पुरुष के घर में कदाचित् दरिद्रता नहि होवे है अर्थात् दिन दिन लक्ष्मी की वृद्धि होवे है इति ॥ इसप्रकार दीपक को जलाय और नमस्कार करके पश्चात् स्नान करणा चहिये । जो सायंकाल में स्नान करना शरीर के अनुकूल नहि पड़े तो केवल हस्त

पाद मुख प्रक्षालन करके फिर प्रातःकालवत् एकांत स्थान में आसन पर बैठकरके प्रातः-कालवत् पूर्वोक्त रीति सें तीनवार आचमन और प्राणायाम तथा संध्या करके पश्चात् अपने इष्टदेव का मानस ध्यान और पूजन करणा चहिये, तदनंतर अवकाशानुसार प्रातःकाल-वत् गुरूपदिष्ट मंत्रका जप करणा चहिये तथा जपके अंत में पूर्वोक्त प्रातःकालवत् अपने इष्टदेव को अर्पणकर देना चहिये।। इसप्रकार सायंकाल के नित्य नियम से निवृत होकर के पश्चात् भोजनशाला में आयकरके शरीरके अनुकूल भोजन करणा चहिये। सो भोजन की विधि सर्व पूर्वोक्त प्रातःकालके समान जानलेनी। केवल अन्न प्रोक्षणकाल में 'सत्यं त्वर्तेन परिषिंचामि नमः' इस स्थल में 'ऋतं त्वा सत्येन परिषिंचामिनमः' इसप्रकार पढना चहिये॥ परंतु रात्रि में सर्वदा स्वल्प भोजन करणा चहिये। क्युंकि रात्रि में शरीर में बातकी वृद्धि होवे है इसलिये अधिक भोजन करणेसे अजीर्णादि रोगोंकी उत्पत्तिका भय

रहता है ॥ इसप्रकार भोजन से निवृत्त होकर पश्चात् सत्संगनि सत्शास्त्रावलोकन संगीत-वादित्रादिकों से किंचित् काल व्यतीत करके पश्चात् शयन करणा चाहिये ॥ परंतु शयनसे प्रथम गृहस्थलोकों को ऋतुस्नान के अनंतर स्त्रीसंगम अवश्य करणा उचित है। यह वार्ता पराशरसंहितामें कथन करी है ॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥

अर्थ—जो पुरुष ऋतुसें स्नानकी हुई अपनी स्त्रीकेपास किसी क्रोधादिनिमित्तसें गमन नहिकरे है तिसको घोर बालहत्या का दोष होवे है इति ॥ और जो ऋतुस्नानके दिन अमावस्यादिक वर्जिततिथि होवे तो गमन नहि करणा चहिये यह वार्ता मनुस्मृतिमें कथन करी है ॥

अमावस्याष्टमी चैव पौर्णमासी चतुर्दशी।
ब्रह्मचारी भवेनित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥

अर्थ—अमावस्या अष्टमी पुर्णमासी और चतुर्दशी इन तिथियोंमें यद्यपि ऋतुस्नान किये

हुये भी स्त्री होवे तो भी गृहस्थ पुरुषको ब्रह्मचारी ही रहना चहिये अर्थात् स्त्रीकेपास नहि जाना चहिये इति ॥ तथा रजस्वला और गर्भवती स्त्रीके समीप भी गमन नहि करणा चहिये तथा गर्भवती के हाथ से भोजन भी नहि करणा चहिये यह वार्ता शिवसंहिता में कथन करी है ॥

मासे षष्ठे सप्तमे वाष्टमे वा प्राप्ते पत्न्या नैव कुर्यात् कदाचित् । होमं यानं देवयात्रां तथैव तस्या हस्ते नाशनं विप्रपुण्यम् ॥

अर्त—गर्भधारण से लेकर छठे सातवे अथवा आठवें महीनेसे पीछे होम गमन और देवयात्रादि कर्म कदाचित् स्त्रीकेसाथ नहि करणे चहिये तथा तिसके हाथसे भोजन करणे सें भी दोष होवे है इति ॥ इसप्रकार स्त्रीगमन सें निवृत्तहोकर जलसें हस्तपादादिक प्रक्षालन करके पश्चात् पवित्र स्थानमें निर्मल मंचादि शय्यापर शयन करणा चाहिये केवल पृथिवी पर गृहस्थ लोकोंको शयन नहि करणा चाहिये यह वार्ता गार्ग्यऋषि ने कथन करी है ॥

न स्वपेच्च तथा भूमौ विना दीक्षां कदाचन ।
धान्यगोधनविप्राणां गुरूणां च तथोपरि ॥

अर्थ-यज्ञादि अथवा ब्रह्मचर्यादि दीक्षा के विना पृथिवीपर शयन नहि करणा चहिये तथा जिस स्थानके नीचे अनाज भरा हो या गोशाला हो या विद्वान् ब्राह्मण रहते हों या देवताकी प्रतिमा हो तिसके ऊपर कदाचित् शयन नहि करणा चहिये इति ॥ तथा शयन में दिशाका विचार मार्कंडेयपुराण में निरूपण किया है ॥

प्राक्शिराः शयने विंद्याद्धनमायुश्च दक्षिणे ।
पश्चिमे प्रबला चिंता हानिर्मृत्युर थोत्तरे ॥

अर्थ-पूर्वदिशा की तरफ अथवा दक्षिण दिशाकी तरफ शिर करके सोनेसे धन और आयुषकी वृद्धि होवे है और पश्चिम दिशाकी तरफ प्रबल चिंता होवे है तथा उत्तर दिशा की तरफ हानि और अल्पायु होवे है इसलिए सर्वदा पूर्व अथवा दक्षिणदिशा की तरफ शिर करके शयन करणा चहिये इति ॥ तथा शयन

काल में स्त्रीका परित्याग करदेना चाहिये अर्थात् स्त्रीके साथ एक शय्या पर नहि सोना चहिये यह वार्ता दक्षस्मृतिमें कथन करी है।

निद्रासमयमासाद्य तांबूलं वदनात्त्यजेत् ।
पर्यंकात्प्रमदां भालात्पुंड्रंपुष्पाणि मस्तकात् ॥

अर्थ-निद्राकाल में तांबूल को मुख में नहि रखना चहिये और मंच से स्त्री को जुदा कर देना चहिये और मस्तक से तिलक दूर कर देना चहिये तथा शिर से या कंठ से पुष्प माला का परित्याग कर देना चहिये इति ॥ तथा शयन काल में शरीर की रक्षा के लिये वैष्णवलोकोंको इस श्लोकका तीनवार अथवा सातवार पाठ करणा चहिये ॥

जलेरक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः ।
अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ॥

अर्थ- जलमें वाराह भगवान् हमारी रक्षा करो स्थल में वामन भगवान् रक्षा करो, घोर वनमें नरासिंह भगवान् रक्षा करो और सर्व स्थानों में केशव भगवान् हमारी रक्षा करो

इति ॥ तथा शैवलोकोंको इस श्लोकका पाठ करणा चहिये ॥

जलेरक्षतु नंदीशः स्थले रक्षतु भैरवः ॥
अटव्यां वीरभद्रश्च सर्वतः पातु शंकरः ॥

अर्थ-जलमें नंदीश्वर हमारी रक्षा करो स्थलमें भैरव रक्षा करो घोर वन में वीरभद्र रक्षा करो और सर्व स्थलों में शंकर हमारी रक्षा करो इति ॥ तथा शाक्तलोकोंको इस श्लोकका पाठ करणा चाहिये ॥

जलेरक्षतु रुद्राणी स्थले रक्षतु वैष्णवी ।
अटव्यां भारती चैव सर्वतः पातु चंडिका ॥

अर्थ जलमें महाकाली हमारी रक्षा करो, स्थलमें महालक्ष्मी रक्षा करो, घोर वनमें महासरस्वती रक्षा करो और सर्व स्थलोंमें भगवती चंडिका हमारी रक्षा करों इति । इत्यादि अन्यभी कवच रात्रिसूक्तादि यथारुचि पाठ करणे चाहिये पश्चात् (ॐ सर्वभूतानिवारकाय शार्ङ्गाय सशराय सुदर्शनायास्त्रराजाय हुंफट् स्वाहा) इस मंत्र का तीन वार पाठ करके तीन

नाल देकर हृदय में परमेश्वर का स्मरण करते हुये सुखपूर्वक शयन करणा चाहिये ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त रीति सें जिज्ञासुजनोंके हितार्थ प्रातः काल सें लेकर शयनकालपर्यंत स्त्री पुरुष दोनोंके लिये साधारण नित्याचारका निरूपण करके अब संक्षेपसें स्त्रियों के विशेष धर्म वर्णन करते हैं सो प्रथम तो स्त्रियोंके लिये मनोवाक् कायकरके अपने पतिकी सेवा करणीही सर्व धर्मोंसे मुख्य धर्म है यह वार्ता भागवतमें कथन करी है ॥

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता ।
तद्बंधुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥
कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ।
वाक्यैःसत्यैःप्रियैःप्रेम्णा कालेकाले भजेत्पतिम्॥
या पतिं हरिभावेन भजेत् श्रीरिव तत्परा ।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥

अर्थ–स्त्रियोंको केवल अपने पतिकोहि देवता रूप जान करके तिसकी सर्व प्रकार से अनुकूल सेवा करणी चहिये तथा पतिके पिता मातादिक

जो बंधु लोक होवें तिनकी भी आज्ञा पालन करणी चहिये और नित्यप्रति पतिका व्रत पालन करणा चहिये अर्थात् पतिके भोजन किये पश्चात् आप भोजन करणा पतिके शयन किये पश्चात् शयन करणा पतिके उठनेसे प्रथम उठना इत्यादि व्रत पालन करणे चाहिये तथा सर्वप्रकारके पतिके मनोवांछित खानपानादिक पदार्थोंसे नम्रता और जितेन्द्रियपणेसे और मधुर सत्यवचनों करके प्रीति पूर्वक सर्वकालमें सुशील स्त्रीको अपने पति की सेवा करणी चहिये तथा जो स्त्री अपने पतिको विष्णुरूप जानकर लक्ष्मीके समान तत्पर होकर तिसकी सेवा करती है सो अंतकालमें वैकुंठलोकमें विष्णुरूप पतिके साथ लक्ष्मीरूप होकर आनंदको प्राप्त होती है इति ॥ तथा मनुस्मृतिमें भी कहा है ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्
पतिं शूश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ।

अर्थ-स्त्रियोंकेलिये पतिसेवाके विना दूसरा कोई यज्ञ व्रत उपवासादिक विधान आवश्यक

नहि है किन्तु केवल जिस कर्मकरके स्त्री पतिकी सेवा करती है तिसीकरके स्वर्गलोकको प्राप्त होती है इति ॥ तथा स्कंदपुराण में भी लिखा है ॥

सेवेत भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् ।
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥
शंकरादपि विष्णोर्वा पतिरेकोधिकः स्त्रियाः ।

अर्थ–सुशील स्त्रीको अपने पतिका उच्छिष्ट अन्न जल फलादिक भक्षण करणे चहिये और जो कदाचित् तीर्थस्नानकी इच्छा हो तो पतिके चरणोंको धोयकरके पान करलेना चहिये किंच शंकर तथा विष्णुसेभी अपने पतिको अधिक जानकर तिसकी सेवामें तत्पर रहना चहिये इति ॥ और गंगा आदितीर्थस्नान देवदर्शन यात्रागमन दानपुण्य व्रत उपवास आदि शुभ कर्म सब पतिकी आज्ञा लेकर करने चहिये तथा चाहे पति किसी प्रकारकाभी होवे तोभी स्त्रीको तिसका निरादर नहि करणा चहिये यह वार्ताभी भागवतमेंही कथन करी है ॥

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥

अर्थ—यद्यपि अपना पति दुराचारी कुरूप वृद्ध मूर्ख रोगी और निर्धन भी होवे तो भी परलोक में अपने कल्याण की इच्छावाली स्त्रियोंको तिसका निरादर और परित्याग नहि करणा चहिये परन्तु जो कदाचित् पति से ब्रह्महत्यादि विशेष पापकर्म होजावे तो केवल जबतक सो तिस पापका प्रायश्चित्त नहि करलेवे तबपर्यंत तिसके साथ एक शय्यापर शयन नहि करणा चहिए क्यूंकि तिस कालमें शयन करणेसें सो स्त्री भी प्रायश्चित्तके योग्य होजावे है इति॥ किंच अपने पतिकेविना दूसरा उपपति अर्थात् जार कदाचित् नहि करणा चहिये यह वार्ता व्यासजीने भी कथन करी है।

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गुकृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियः॥

अर्थ—स्त्रियोंको उपपति करणेसें परलोक में नरककी प्राप्ति होवे है और इस लोकमें

यशकी हानि तुच्छपणा दुःख और भयकी प्राप्ति होवे है और सर्वत्र निंदित होवे है इसलिये कुलीन स्त्रियोंको उपपति कदाचित् नहि करणा चहिये इति ॥ तथा स्त्रियोंको परपुरुष सें वार्तालाप और हांसीभी नहि करणी चहिये यह वार्ता भी व्यासजीनेहि कथन करी है ॥

द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षेण निरीक्षणम् ।
असत्प्रलापो हास्यं च दूषणं कुलयोषिताम्॥

अर्थ—घरके बाहिर दरवाजापर नित्य बैठना और घरके झरोखे बारियोंसें बाहिर देखना असत् पुरुषोंसे वार्तालाप और हांसी करणा इन लक्षणोंसे स्त्रियां दूषित अर्थात् व्यभिचारिणी हो जाती हैं इति ॥ इसलिये कुलीन स्त्रियोंको कदाचित् स्वतंत्र नहि रहणा चहिये ॥ यह वार्ता याज्ञवल्क्य संहिता में कथन करी है ।

रक्षेत् कन्यांपिता विन्नां पतिः पुत्राश्च वार्धके ।
अभावे ज्ञातयस्तेषां स्वातंत्र्यं न क्वचित् स्त्रियः ॥

अर्थ—कन्यावस्थामें पिताके अधीन रहना चहिये और यौवनावस्थामें पतिके अधीन और वृद्धावस्थामें पुत्रोंके अधीन रहना चहिये और पिता पति पुत्र कोईभी नहि होवे तो तिनके कुटुंब के अधीन रहना चहिये इसप्रकार स्त्री को स्वतंत्र कभी नहि रहना चहिये इति ॥ क्युंकि स्वतंत्र रहनेसें स्त्री व्यभिचारिणी हो जावे है और व्यभिचारिणी होनेसे मर करके दुर्गति को प्राप्त होवे है यह वार्ता मनुस्मृति में कथन करी है ।

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम् ।
सृगालयोनिमाप्नोति पापरोगैश्च पड्यिते ॥

अर्थ—पतिसे छिपकर व्यभिचार करणेसें स्त्री को इस लोक सें तो निन्दा की प्राप्ति होवे है और परलोक में श्रृंगालादिक नीच योनियों की प्राप्ति होवे है तथा नानाप्रकार के रोगों करके पीडित होवे है इति ॥ किंच पुत्रकी कामना करके भी व्यभिचार नहि करणा चहिये यह वार्ता भी मनुस्मृतिमें ही कथन करी है ।

अपत्यलोभाद्या नारी भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निंदामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥

अर्थ जो स्त्री पुत्रके लोभ करके अपने भर्तासें छिपकर व्यभिचार करती है सो इस लोकमें निंदा को प्राप्त होवे है और परलोकमें पतिलोकसें भ्रष्ट होवे है इति। परंतु पुरुषोंकोभी चहिये कि स्त्रियों को पूरी उमरमें विवाह करें और उनको विद्या पढ़ावें तथा सीनेपरोने कसीदा रसोई आदि अच्छे अच्छे गुण सिखाकर घरके कामोंमें चतुर बनावें तथा खानपान वस्त्र आभुषण आदि से उनको प्रसन्न रखें और उनके अनुकूल सुख में बाधा न करें ॥ इस प्रकार साधारण स्त्रियोंके धर्मों को निरूपण करके अब संक्षेप से रजस्वला स्त्रीके धर्म निरूपण करते हैं ॥ सो जिस कालमें ऋतु दर्शन होवे तिस काल सें लेकर चौवीस प्रहर अर्थात् तीन दिनपर्यंत स्त्री अपवित्र रहती है इसलिये इन तीन दिनों में देवता पूजन मंत्रजप स्तोत्र पाठ-रसोई करना जल लाना नवीन वस्त्र आभूषण पहरणे दिनमें सोना नेत्रोंमें अंजन

डालना इत्यादि सर्व कामोंका परित्याग कर देना चहिये तथा घरमें खानपानादिकी वस्तुवों को स्पर्श भी नहि करणा चहिये और सर्वसें जुदा एकान्तस्थानमें रहना चहिये और पत्रावली अथवा जुदा रखे हूये पात्रमें भोजन करणा चहिये ॥ इस प्रकार नियमसें तीन दिन व्यतीत करके पश्चात् चौथे दिन स्नान करके और सर्व वस्त्रोंको प्रक्षालन करके प्रथम सूर्य भगवान् को नमस्कार करना चहिये यह वार्ता पद्मपुराण में कथन करी है ॥

स्नात्वान्यं पुरुषं नारी न पश्येच्च रजस्वला ।
ईक्षेत भास्करं देवं ब्रह्मकूर्च ततः पिवेत् ॥

अर्थ–रजस्वला स्त्रीको स्नानके अनंतर किसी दूसरे पुरुष का मुख नहीं देखना चाहिये किंतु प्रथम सूर्यभगवान्‌का दर्शन करके पश्चात् शरीर शुद्धि के लिये पंचगव्य अथवा केवल गौका दुग्ध पान करणा चहिये इति ॥ तदनंतर नवीन वस्त्र आभूषणादि धारण करने और घरके पदार्थोंके स्पर्श करणेमें दोष नहि है परंतु रसोई

देवतापूजनादि कर्म पांचवे दिनसे शुरू करणे चहिये ॥ इस प्रकार संक्षेपसें रजस्वलाके धर्म निरूपण करके अब संक्षेप सें विधवा स्त्रियोंके धर्म निरूपण करते हैं ॥ सो पतिमरणेके अनंतर विधवा स्त्रियोंको दिनमें एकवार भोजन करना चहिये और पृथिवीपर शयन करणा चहिये यह वार्ता बृहन्नारदीयमें कथन करी है ॥

एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन ।
तथा भूशयनं कार्यं पतिसौख्यसमीहया ॥

अर्थ-विधवा स्त्रीको सर्वदा एकाहार करणा चहिये दिनमें दूसरीवार भोजन नहि करणा चहिये तथा पतिके हितके लिये सर्वदा पृथिवी पर शयन करणा चहिये इति तथा तांबूल भक्षण करणा और सुंदर वस्त्र भूषण पहरणे और सुगंधि तेल लगानाभी नहीं चहिये यह वार्ता वृद्धहारीत संहितामें कथन करी है ॥

केशरंजन तांबूलगंधपुष्पादिसेवनम् ।
भूषणं रंगवस्त्रं च कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥

द्विवारभोजनं चाक्ष्णोरंजनं वर्जयेत् सदा ।
स्नात्वा शुक्लांबरधरा जितक्रोधा जितेन्द्रिया ।
सुनिर्मला शुभाचारा नित्यं संपूजयेद्धरिम् ॥

अर्थ-शिरके बालोंका सुधारणा तांबूल भक्षण करणा सुगंधि तेल लगाना पुष्पमाला धारण करणी सुंदर भूषण और रंगेहुये वस्त्र पहरणे कांसी के पात्र में भोजन करणा और दिन में दोवार भोजन करणा नेत्रों में अंजन डालना इतनी बातें विधवा स्त्रीको नहीं करणी चहिये किन्तु नित्यप्रति स्नान करके और श्वेत वस्त्र धारण करके सर्व इन्द्रियोंको और काम क्रोधादिकों को जीतकर पवित्र श्रेष्ठाचार से विष्णु भगवान् का पूजन और स्मरणध्यान करणा चहिये तथा गीता विष्णुसहस्रनामादिक स्तोत्रोंका पाठ करणा चहिये और ब्राह्मण द्वारा धर्मशास्त्र इतिहास पुराणादि श्रवण करणे चहिये तथा गुरुउपदिष्ट मंत्रका जप करणा चहिये इति ॥ इस प्रकार संक्षेप से स्त्रियों के धर्म निरूपण करके अब ग्रंथका उपसंहार करते

हुये पूर्वोक्त आचार पालन करणेका फल वर्णन करे हैं ॥

इत्याचारविधिं ज्ञात्वा यश्चरेत्कामवर्जितः ।
नरो वा कुशला नारी स्वांतशुद्धिमवान्पुयात् ॥
शुद्धेंतःकरणे शीघ्रमात्मज्ञानोदयो भवेत् ।
कर्मबंधं विहायाशु ततो याति परां गतिम् ॥

अर्थ—यह जो ग्रंथके आदिसे लेकर यहां पर्यंत धर्म शास्त्रों के प्रमाणसहित नित्याचार की विधि निरूपण करी है तिसको सम्यक् प्रकारसें जान करके तिसके अनुसार जो विवेकी पुरुष अथवा सुशील स्त्री फल की कामनासें रहित होकर केवल ईश्वरार्पण बुद्धिसें आचारण करता है तिसकी सर्व पापों के नाश होनेसें अंतःकरणकी शुद्धि होवे है और अंतः-करण की शुद्धि होनेसे अनंतर शीघ्रही वेदांत-शास्त्र के श्रवण मनन और महात्मा पुरुषोंके सत्संगसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवे है और यथार्थ ज्ञानके उदय होनेसें सर्व शुभाशुभ कर्मोंके बंधनोंसे मुक्त भया पुरुष परमगति

अर्थात् कैवल्य मोक्षपदको प्राप्त होवे है इति॥ इस प्रकारसें परंपरा कैवल्य मोक्षपदका हेतुभूत जो नित्याचार है सो विवेकी पुरुषों को निरालस होकर अवश्य ही पालन करणा योग्य है ॥ इस प्रकार ग्रंथ का उपसंहार करके अब इस ग्रंथ का नाम और इसके निर्माण करने का प्रयोजन कथन करें हैं ॥

आचारदर्पणः सोयं ग्रंथो लोकेहितेप्सुना ।
ब्रह्मानंदाभिधानेन यतिनाऽकारि पुष्करे ॥

अर्थ—नित्याचारदर्पण नामक जो यह ग्रंथ है सो केवल संस्कृत भाषाके नहीं जाननेहारे जिज्ञासु लोकोंके हितार्थ ब्रह्मानंद स्वामीने श्रीपुष्कर तीर्थ में निर्माण किया है इति ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य ब्रह्मानंद स्वामिविरचितो नित्याचारपदर्पणः समाप्तः ॥
